दादावाणी

अभेदता, सारे विश्व के संग

तंत्री तथा संपादक :
दीपक देसाई
वर्ष: ५ अंक : १
अखंड क्रमांक : ४९
नवम्बर २००९

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सीटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-३८२४२१
फोन : (०७९) ३९८३०१००
e-mail :
dadavani@dadabhagwan.org
अहमदाबाद : (079) 27540408
वडोदरा : (0265) 2414142
मुंबई : 9323528901
राजकोट त्रिमंदिर :
9924343478, 9274111393
U.S.A. : 785-271-0869
U.K.: 07956476253
Website : www.dadashri.org
Hindi.dadabhagwan.org

Publisher, Owner & Printed by :
Deepak Desai on behalf of
Mahavideh Foundation
5, Mamtapark Society,
Bh. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

Printer/Press :
Mahavideh Foundation
Basement, Parshvanath
Chambers, Nr.RBI,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)

१५ साल का

भारत :	८०० रुपये
यु.एस.ए. :	१५० डॉलर
यु.के. :	१०० पाउन्ड

वार्षिक

भारत :	१०० रुपये
यु.एस.ए. :	१५ डॉलर
यु.के. :	१० पाउन्ड

भारत में D.D. / M.O. 'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से भेजे।

संपादकीय

इस काल में बिना भेद की स्थिति की कल्पना की जा सकती है क्या? घर में भेद, ज्ञाति में भेद, समाज में भेद, धर्म में भेद, ऐसे कितने ही भेद हैं। अरे! खुद आत्मा है और खुद अपने आप से ही अनजान है, यही क्या सबसे बड़ा भेद नहीं है? भेद होने का कारण क्या है? तब कहे, भेदबुद्धि। बुद्धि भेद करवाती है कि 'यह मेरा और यह तेरा, मैं सही और तू गलत, मैं अच्छा और तू बुरा, मैं ऊँचा और तू नीचा', आदि। जब तक बुद्धि है तब तक मैं-पन छूटता नहीं है, और जब तक मैं-पन नहीं छूटता तब तक अभेद कैसे हो सकते हैं?

जब अपने अहंकार को पुष्टि नहीं मिलती तब सामनेवाले व्यक्ति के साथ भेद हो जाता है, उसके साथ द्वेष होता है और अहंकार की पुष्टि होने पर राग होता है। यानी राग-द्वेष करके मनुष्य खुद ही खुद के साथ भेद करता है। जीव मात्र में भगवान है और खुद उससे भेद करे अर्थात् भगवान के साथ भेद किया। फिर खुद भगवान के साथ अभेद कैसे हो सके?

व्यवहार में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच होनेवाले भेद सच्ची समझदारी से निकल जाते हैं और जीव-शिव का भेद आत्मज्ञान के द्वारा चला जाता है। ज्ञानी पुरुष के पास आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद स्वरूप का भान होता है और तब से निश्चय से अभेद होने की शुरूआत होती है। ज्यों ज्यों फाइलों का निपटारा होता जाए, प्रारब्ध कम होता जाए, संसार छूटता जाए, त्यों त्यों अभेदता उत्पन्न होती जाए।

सच्ची अभेदता यानी क्या? कि जगत् निर्दोष लगे, खुद स्वरूप में तन्मयाकार रहे और भगवान के साथ एक हो जाए। जब (सर्वत्र) 'मैं ही' में अभेदता रहे तभी खुद परमात्मा हो जाए। वीतराग सदैव उसी दशा में रहते हैं। ऐसे वीतराग ज्ञानी, परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) जीव मात्र के साथ अभेद भाव से रहकर अभेदता का एक ज्वलंत उदाहरण रूप बने। खुद उन्होंने तो अभेदता प्राप्त की ही, मगर अनेकों को अभेदता की राह पर ला दिया, यह कोई ऐसी-वैसी सिद्धि थोड़े ही कहलाती है?

ज्ञानी पुरुष निष्पक्षपाती होते हैं। जीव मात्र के साथ वीतराग होते हैं। निरंतर आत्मस्वरूप में रहते हैं और अभेदता से बरतते हैं। उनको प्रत्येक जीव में 'मैं ही स्थित हूँ' ऐसा रहता है। यदि कोई गाली दे तो भी 'मैं ही बोलता हूँ' और 'मैं ही सुनता हूँ' ऐसा उपयोग रहता है। यानी भेद नहीं, संपूर्ण अभेदभाव। अभेदता हुई वही प्रेम। प्रेम वही खुद परमात्मा है। जगत् के साथ अभेदता हुई कब कहलाती है? जब प्रेम स्वरूप होते हैं तब।

दादाश्री कहा करते थे कि स्वरूपज्ञान प्राप्ति के बाद सारे महात्मा अब (ज्ञान की) सुरक्षा-सीमा में आ जाने चाहिए। अर्थात्, कि यदि सामनेवाला व्यक्ति हमें जुदा माने तो भी हम उसे एक मानें। हमारी उसके साथ अभेदता टूटनी नहीं चाहिए। जितनी अभेदता रहती है उतनी आत्मा की पुष्टि होती है। दादाश्री के 'अभेदता' के विशाल अभिगम को जीवन में अपनाकर, दादाश्री के ज्ञान को उज्जवल बनाकर, सारे जगत् के साथ अभेदता रखकर, भरत क्षेत्र से ऋणमुक्त होकर, एकावतारी पद की प्राप्ति के ध्येय को चरितार्थ करने के पुरुषार्थ में लग जाएँ, यही अभ्यर्थना।

दीपक देसाई ...

पाठकों से...

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेजी शब्द का अर्थ है अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। पाठक जहाँ पर भी चंदुभाई नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधार कर समाधान प्राप्त करें। भाषांतर में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी हैं।

अभेदता, सारे विश्व के संग

ज्ञानी अभेद, 'दादा भगवान' के साथ

प्रश्नकर्ता : आपमें 'ज्ञानी' कौन और 'दादा भगवान' कौन यह समझ में नहीं आता है।

दादाश्री : जो ज्ञानवाक्य बोलते हैं, वे व्यवहार में 'ज्ञानी' कहलाते हैं और जो भीतर प्रकट हुए हैं, जिनके बगैर तो ज्ञानवाक्य निकलते नहीं, वे 'दादा भगवान' हैं। हम भी उस पद में आना चाहते हैं। इसलिए हम भी 'दादा भगवान' को नमस्कार करते हैं। कुछ समय के लिए हम 'दादा भगवान' के साथ अभेद रहते हैं, तन्मय रहते हैं और जब यह वाणी बोलते है उस समय भीतर 'भगवान' अलग और 'हम' अलग होते है। अर्थात् जितना समय हम भीतरवाले भगवान के साथ रहते हैं, उतना समय अभेद होते हैं, उतना समय हम पूर्णस्वरूप होते हैं और वाणी बोलते समय अलग पड़ जाते हैं।

स्व के साथ ज्ञानी, भेद-अभेद भाव से

हम जब बात करते हैं तब बात में नहीं होते, बात से परे होते हैं। यदि हम बात में हो तो हम दूसरे मिनट ही बदल जाएँ, लेकिन हम बदलते नहीं।

'हम' अर्थात् यह जो बाह्य रूप में दिखते हैं वो 'हम' नहीं हैं। यह जो दिखाई देते हैं उसके 'हम' मालिक नहीं हैं। हमारे पास टाइटिल (मालिकी भाव) भी नहीं है। मन के, वाणी के, देह के मालिक 'हम' नहीं हैं। हम जब 'हम' कहते हैं तब 'दादा भगवान' की बात करते हैं। हम अमुक स्टेज में होते है तब 'दादा भगवान' और अमुक स्टेज में 'ज्ञानी' होते हैं। प्रश्नों का स्पष्टीकरण करते हैं वे 'ज्ञानी'। मतलब जब यह सत्संग की बातें चलती है तब मुझे 'ज्ञानी' के तौर पर रहना पड़ता है। वर्ना अभेदभाव से रह सकता हूँ। यानी मैं भेदभाव से और अभेदभाव से, दोनों तरीके से रह सकता हूँ। जब कि संपूर्ण वीतराग तो अभिन्नभाव से ही रहते थे। हमारा उतना कच्चापन है कि ज़रा इतना भेदभाव रहता है।

ज्ञानी और भगवान में इतना अंतर

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी और भगवान में क्या अंतर है?

दादाश्री : ज्ञानी और भगवान में इतना अंतर है कि ज्ञानी समझ सकें, सबकुछ देख सकें, किंतु जान नहीं सकते। यह जो दिखाई देते हैं, वे तो भादरण के ए. एम. पटेल हैं और मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ और दादा भगवान जुदा हैं, वे तो परमात्मा ही हैं। चौदह लोक के नाथ हैं।

मेरी तीन सौ साठ डिग्री पूर्ण नहीं हुई और तीन सौ छप्पन पर जाकर खड़ा रहा, इसलिए भीतर जो प्रकट हुए हैं, वे भगवान और मेरे में अलगाव रहा है। यदि मेरी भी तीन सौ साठ डिग्री हो गई होती तो हम दोनों एकाकार हो जाते। मगर अब यह जुदापन रहा है क्योंकि यह निमित्त रूप का इतना कार्य शेष रहा होगा न? लोगों के कल्याण का कार्य करना है इसलिए जुदापन रहा है।

चौदह लोक के नाथ प्रकट वहाँ

प्रश्नकर्ता : आप जो कहते हैं कि 'भीतर

चौदह लोक के नाथ प्रकट हुए हैं,' तो वे चौदह लोक के नाथ जो आपको प्रकट हुए अनुभव में आते हैं, वह अनुभव कैसे होता है?

दादाश्री : एकता लगनी चाहिए सभी के साथ। जगत् के जीव मात्र के साथ एकता लगनी चाहिए। भेद-अभेद नहीं लगना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मतलब आपको स्पष्टरूप से एकता लगे?

दादाश्री : जीव मात्र के साथ एकता लगनी चाहिए। एकता ही लगा करे इसलिए किसी का दोष दिखाई नहीं दे। सभी निर्दोष ही दिखाई दें, वही पूर्ण दशा। फिर अपार अनंत शक्तियाँ (प्रकट) होती हैं।

प्रश्नकर्ता : वे कैसी शक्तियाँ? शक्तिओं के द्वारा ही हमें सब मालूम पड़े न?

दादाश्री : हाँ, सब होता है! मगर ये सारी शक्तियाँ संसार से मुक्त करानेवाली होती है, सांसारिक शक्तियाँ नहीं होती। संसार में से मुक्त करानेवाली, इसलिए सभी को अड़चन के अनुसार स्पष्टीकरण कर देते हैं कि 'भैया, तू ऐसा करना, तू वैसा करना' आदि।

प्रश्नकर्ता : मतलब आपको शक्तियाँ अनुभव में आती हैं?

दादाश्री : सभी अनुभव में आएँ और प्रकट होती हैं। 'मेरा नहीं है' ऐसा जो हम कहते हैं इसका क्या कारण है? हमारे में ऐसे जो किंचित् मात्र दोष हैं कि जिन्हें यह जगत् समझ नहीं पाए, ऐसे दोषों को, सूक्ष्मतम दोषों को भी वो हमें दिखलाते हैं। यानी वो (चौदह लोक के नाथ) दिखलानेवाले हैं और हमें दिखलाते हैं। यानी वो दिखलानेवाले हैं और हम जाननेवाले हैं। उनके दिखलाने पर ही हमने इस दोष को जानां। अत: है पूर्ण अवतार, मगर साथ ही एक दशा है। चौदह लोक के नाथ पूर्ण प्रकट हैं, कोई दोष दिखलाए बगैर नहीं रहते। यही आपको भी, आपकी स्थिति अनुसार प्रकट होते हैं और उसके अनुसार आपको दिखलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष के द्वारा भगवान का संपर्क संभव है या नहीं?

दादाश्री : निरंतर। यद्यपि थोड़े समय के लिए ही वे ऐसी स्थिति में नहीं होते। जब बोलना होता है, बातचीत करनी पड़ती है, तब ज़रा जुदा रहना पड़े वर्ना अभेद रूप से ही होते हैं। मतलब उस समय वे भगवान हुए होते हैं, मगर उस वक्त शब्द नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : बराबर है।

दादाश्री : हम भगवान को इस तरह पहचानें कि हमारे जो सूक्ष्मतर दोष, सूक्ष्मतम दोष होते हैं वे हमें दिखलाएँ। हम आपके सारे दोष दिखला देते हैं मगर हमारे जो सूक्ष्मतम दोष हैं वे हमें (भीतरवाले) भगवान दिखलाते हैं। उस पर से हम जान जाएँ कि ये भगवान आए। आखिर तक की, सारी की सारी, सर्वस्व बात जो जानते हैं, उनकी सर्वज्ञता में ज़रा-सा भी कच्चापन नहीं है ऐसे सर्वज्ञ हैं (ऐसा यह सर्वज्ञपद है)।

आत्मा की सगाई वही अभेदता

प्रश्नकर्ता : जो अंदर प्रकट हुए हैं, उनका अनुभव क्या स्वसत्ता के कारण रहता है?

दादाश्री : नहीं, अभेदता लगनी चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : दादाजी, उस अभेदता के बारे में समझना है, किस के साथ अभेदता?

दादाश्री : आत्मा के साथ।

प्रश्नकर्ता : यानी पुद्‌गल की आत्मा के साथ अभेदता?

दादाश्री : पहले पुद्‌गल के साथ अभेदता थी,

फिर अब आत्मा के साथ अभेदता करनी है। मगर वह तो जिसे स्वरूपज्ञान मिला हो वह ऐसा कर सके, ज्ञान नहीं मिला हो तो अभेदता कैसे होगी? सृष्टि को पसंद आए ऐसी बात नहीं है यह, सृष्टि को तो यह सबकुछ चाहिए ही। यह बात तो उनके लिए है, कि जो संसार से ऊब गए हैं, यह बात हिन्दुस्तान के लोगों के लिए है। दूसरे, बाहर के लोग तो अभी लंबे अरसे तक डिवेलॉप (विकसित) होते होते यहाँ तक पहुँचेंगे। अभी तो वे पुनर्जन्म को भी समझते नहीं हैं।

परमात्मा की प्रतीति से, प्राप्ति पूर्णत्व की

(अहंकार) जब मूढ दशा में आए तब मूढात्मा कहलाए। 'मैं चंदुलाल हूँ, मैं कलक्टर हूँ' वह क्या कहलाए? वह मूढात्मा की दशा है और नाशवंत चीज़ों में सुख मानता है। खुद अविनाशी है और नाशवंत चीज़ें विनाशी, उन दोनों का गुना कभी होता ही नहीं। फिर भी भ्राँति से भौतिक में सुख मानता है, इसलिए 'मूढात्मा' कहा है।

यह तो अनंत जन्मों के संशय भरे पड़े हैं। उन सभी को 'ज्ञानी पुरुष' फ्रेक्चर कर (तोड़) देते हैं तब खुद संशय रहित होता है और तभी परमात्मा की प्रतीति बैठती है। वह जो श्रद्धा बैठती है वह 'राइट बिलीफ़' है।

फिर 'ज्ञानी पुरुष' जब उसे परमात्मा की प्रतीति करवाते हैं कि 'यह सारा जगत् मेरा नहीं है, और मैं खुद परमात्मा ही हूँ' तब 'मैंपन' परमात्मा में अभेद हो जाता है। पहले संपूर्ण अभेद नहीं होता है, प्रतीतिभाव से अभेद होता है। पहले प्रतीतिभाव से है, बाद में ज्ञानभाव से अभेद होता है। अर्थात् पहले ऐसी प्रतीति होनी चाहिए कि 'मैं परमात्मा हूँ'। इस समय 'मैं चंदुलाल हूँ' यह 'रोंग बिलीफ़' बैठी हुई है। 'मैं कलक्टर हूँ' यह 'रोंग बिलीफ़' है। उन सारी 'रोंग बिलीफ़ों' को ज्ञानी पुरुष फ्रेक्चर कर देते हैं और 'राइट बिलीफ़' बिठा देते हैं, 'खुद' उसका 'स्वीकार' करे, खुद के मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार आदि सभी उसे स्वीकार करें, खुद संशय रहित हो जाए, नि:शंक हो जाए, तब काम होता है।

देह में, मन में, वाणी में, 'मैं हूँ' रखते हैं इसलिए भगवान उनसे दूर रहते हैं और 'स्वरूप' में 'मैं हूँ' रखते हैं उनके साथ भगवान अभेद हो जाते हैं।

भगवान क्या कहते हैं? कि 'यदि आप चंदुभाई हैं, तो हमसे भेद है और यदि आप शुद्धात्मा हैं तो अभेद हैं, तो हम दोनों एक हैं।'

शरणागति यानी क्या? अभेदभाव। शरणागति यानी मैं और तू, हम एक ही हैं, एकभाव। संसार की अन्य सभी चीज़ों पर से भाव छूट जाए तो 'हमारे' साथ अभेदता उत्पन्न होती है।

जब तक भगवान के साथ अलगाव है, जब तक 'मैं चंदु हूँ' ऐसा है, तब तक वे (भगवान) एक नहीं होते। कहेंगे, 'तू अपना देख ले। तू चंदु है, यह सब तेरा है, इसलिए तू चिंता करता है न?' आप चिंता करते हैं न? इसलिए भगवान कहते हैं, 'तू अपना देख ले।' और भगवान के साथ एकता हो जाए तो हो गया, काम ही पूरा हो गया।

प्रश्नकर्ता : प्रभुश्री (ज्ञानी पुरुष श्रीमद् राजचंद्र के अनुयायी) ने कहा था कि, 'भेद का भी भेद जानने का है।' तो मुझे उस भेद का भी भेद जानना है।

दादाश्री : भेद का भेद मतलब अभेद स्थिति। किसी के साथ अलगाव नहीं, ये सारे जो भेद हैं यदि उसका भेद जानना हो, तो अभेद स्थिति। जब तक भेद देखता है तब तक आत्मा प्राप्त नहीं हुआ है। अभेद देखे तब आत्मा प्राप्त हुआ कहलाए।

यह तो पेकिंग (देह) को लेकर हम सभी अलग-अलग दिखाई देते हैं। आत्मा को लेकर हम

सब एक ही हैं। कोई नीम का, कोई शीशम का, कोई सागवान का और कोई बबूल का पेकिंग है। मगर अंदर माल एक सरीखा ही है।

ज्ञानी को नहीं अलगाव किसी से

इनमें से कोई बात आपको फिट हुई? अगर हुई हो तो आगे दूसरी नयी बात बतलाऊँ। यदि कुछ फिट नहीं हुआ हो तो फिर से पूछना। हमें उसके फिट होने से मतलब है, और मैं और आप एक ही हैं।

यदि कोई बात पसंद नहीं आई हो तो मैं वापस लूँगा और हमें ऐसी दूसरी बात करने की ज़रूरत है कि जो आपको पसंद आए, उसमें कोई संकोच नहीं रखना है।

क्या उसमें आपको कोई शर्म आती है? मुझे कोई शर्म नहीं आती। मतलब हम सब एक ही हैं। मेरा आपसे कोई अलगाव नहीं है। मुझसे डरने का कोई कारण नहीं है। तू मुझे डाँटेगा तो चलेगा मगर मैं तुझे नहीं डाँटूँगा यह पक्की बात है।

मैं और आप अलग हैं ऐसा मानना ही नहीं। मैं आपके भीतर बैठा हूँ। सबके भीतर बैठा हूँ। गधे में मैं बैठा हूँ, कुत्ते में बैठा हूँ, बंदर में मैं बैठा हूँ सभी जीव मात्र में मैं बैठा हूँ। आप मेरे साथ अलगाव मत रखना यदि आप मेरे साथ अलगाव रखेंगे तो वह आपकी भूल है।

ज्ञानी पुरुष को किसी के साथ अलगाव नहीं होता है। ज्ञानी को भेदबुद्धि नहीं होती, वे व्यवहार को तोड़ नहीं डालते। व्यवहार को अखंड रखते हैं। ज्ञानी आत्मस्वरूप में होते हैं, और वे सभी को एक ही स्वरूप में देखते हैं। यानी हम सभी एक ही हैं। आपको शायद अलगाव लगे। किंतु मुझे अलगाव नहीं लगता। उसका क्या कारण होगा? आप बताइए मुझे।

प्रश्नकर्ता : कक्षा तो अलग है ही न?

दादाश्री : नहीं, कक्षा-बक्षा कुछ नहीं। मुझे कहीं अलगाव ही नहीं लगता है। कक्षा और ना-कक्षा की कोई बात ही नहीं है। मेरी कक्षा की दृष्टि ही नहीं है। मगर अलगाव ही नहीं लगता। ये सभी जो बैठे हैं उनसे कोई अलगाव ही नहीं। एकता ही लगा करे।

प्रश्नकर्ता : जैसा आपको लगता है ऐसा इन सभी को तो नहीं ही लगता होगा न (सभी को एकता नहीं लगती होगी न)?

दादाश्री : सभी को लगे, किंतु वे उस स्थिति तक पहुँचेंगे तब सभी को ऐसा लगेगा।

प्रश्नकर्ता : उनकी कक्षा या स्थिति तो अलग ही है न?

दादाश्री : लोगों की स्थिति अलग है, लेकिन मुझे स्थिति अलग नहीं लगती। क्योंकि जिसके आधार पर स्थिति दिखाई देती है कि 'यह अलग है, वह अलग है' वह थर्मामीटर मेरे पास है ही नहीं। किस आधार पर अलग दिखाई देता है?

प्रश्नकर्ता : क्योंकि हरएक की (समझ की) केपेसिटी कम-ज्यादा होती है।

दादाश्री : क्या आपको घर में एकता लगती है?

प्रश्नकर्ता : घर में एकता नहीं लगती, कुटुंब में भी नहीं लगती।

दादाश्री : तो कहाँ एकता लगती है?

प्रश्नकर्ता : यहाँ, इन सभी (महात्माओं) में एकता लगे, मगर घर में ऐसा नहीं लगता, ऐसा कईबार होता है। जब घर के अंदर, घर के सभी एकमत नहीं होते हैं तो यहाँ इतने सारे कैसे होते होंगे?

दादाश्री : फिर भी हमारे यहाँ हजारों मनुष्य

साथ ही हैं। हमारे यहाँ यह अजूबा है न? यहाँ कभी अलगाव हुआ नहीं है। मेरे साथ ग्यारह साल से संबंध हो या पंद्रह साल से, मगर कोई अलगाव नहीं। आपको मेरे साथ अलगाव लगे लेकिन मुझे आपके साथ अलगाव नहीं लगता। मुझे किसी के साथ अलगाव नहीं लगता तब मेरे पास ऐसा कौन-सा हथियार होगा?

प्रश्नकर्ता : वह तो एक-दूसरे के संबंध के ऊपर आधार रखता है न!

दादाश्री : नहीं, उसमें संबंध का सवाल ही कहाँ है? मुझे क्यों अलगाव नहीं लगता और आपको अलगाव क्यों लगता है, यह आपको समझाता हूँ।

वसुधैव कुटुम्बकम्

यह सारी आपकी अपनी ही बात है, मेरी अपनी बात नहीं है यह। आपको मैं अलग लगता हूँ मगर मुझे आप अलग नहीं लगते हैं क्योंकि मैं सभी को आत्मा के रूप में देखता हूँ, और मेरे अपने रूप में (स्व-रूप में) ही देखता हूँ। आप उलटा-सीधा बोलें तो भी अलग नहीं लगता, क्योंकि मैं वन फ़ैमिलि (एक परिवार) के रूप में देखता हूँ। और आप तो अपने फ़ैमिलि को ही फ़ैमिलि नहीं गिनते। केवल हमारी पत्नी हीराबा को लेकर नहीं बैठा, इसलिए यह सारा इतना बड़ा फ़ैमिलि मेरा हो गया, वर्ना यदि सिर्फ उन्हीं की फ़ैमिलि सँभालकर बैठ गया होता तो क्या होता? और यह तो सारी दुनिया मेरा परिवार हो गई है।

प्रश्नकर्ता : मगर दादाजी, अब आपसे मिलने के बाद अन्य सभी के साथ भी बहुत अभेदता का अनुभव होता है।

दादाश्री : ऐसा नहीं होता, उनसे लेना-देना नहीं है। केवल आत्मा के साथ ही अभेदता। और दूसरों के प्रति प्रेम। यों एक ही कुटुंब जैसा लगे। ऐसी अभेदता का क्या मतलब है? कि आत्मा से ही सगाई, आत्मा की सगाई, पुद्‌गल की सगाई नहीं। आत्मा की सगाई को लेकर अभेदता है। हमारी अभेदता किस वज़ह से है? तब कहे, आत्मा की सगाई को लेकर है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा अब यहाँ महात्माओं के साथ अनुभव रहता है। ऐसा रहता है लगातार....

दादाश्री : ऐसा तो रहेगा ही न! महात्माओं के साथ तो ऐसा अनुभव में आएगा ही। सगे-संबंधी तो ताना भी मारे, ये लोग ताने नहीं मारते। उलटे हमारी मदद में ही होते हैं।

अभेद आत्मदृष्टि

प्रश्नकर्ता : दादाजी, हम पेड़-पौधे सभी में शुद्धात्मा देखकर सबको नमस्कार करते हैं तो क्या उनके साथ भी अभेदता कहलाए?

दादाश्री : हाँ। हम गाड़ी में बैठे हों और कहीं जा रहे हों तो आप सभी (अपनी दृष्टि से) अलग देखेंगे, मैं अलग देखता हूँ। मेरी, दर्शन क्रिया चालू होती है, ज्ञान क्रिया बंद हो जाती है। ज्ञान क्रिया कब कहलाए? यह नीम, यह आम्रवृक्ष, ऐसा ब्यौरेवार देखें तब ज्ञान क्रिया कहलाए। अन्यथा सामान्य रूप से देखना, वह दर्शन क्रिया कहलाए। अत: सामान्य भाव से, फिर भी अभेद आत्मा की दृष्टि से देखते-देखते जाएँ। मुझे जीव मात्र अभेदता के साथ दिखाई देता है। पेड़-पौधे, लताएँ आदि सभी अभेदता से दिखाई देते हैं, उनमें आत्मा ही देखता हूँ।

अपनापा जाए तो अभेद हो पाएँ

यहाँ तो अभेदभाव है। आप और मैं एक ही हैं। मुझे आपमें से किसी के साथ अलगाव लगता ही नहीं है। ये इतने हजारों मनुष्य हैं, फिर भी उनके साथ मुझे अलगाव नहीं है और इस दुनिया के साथ भी मुझे अलगाव नहीं लगता। यह तो आपको

अलगाव लगता है। अर्थात्, पहली बात यह कि मैं इन हजारों मनुष्यों (सभी महात्माओं) के साथ अभेद रहता हूँ और 'सेकन्डरी' (दूसरे) सारे जगत् के साथ अभेद रहता हूँ। मुझे अन्य किसी जगह, किसी के साथ भेद नहीं है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मुझमें बुद्धि ही नहीं है इसलिए मुझे अभेद लगता है, सब अपना ही लगता है। बुद्धि होती है तब तक ही भेद होता है, लेकिन जहाँ बुद्धि नहीं वहाँ भेद कैसा? बुद्धि तो भेद करेगी, जुदाई दिखलाएगी कि 'यह मेरा और यह तेरा।' जहाँ बुद्धि ही नहीं रही वहाँ 'मेरा-तेरा' कहाँ रहा फिर? यह तो भेदबुद्धि उत्पन्न हुई है, 'मैं जुदा और तू जुदा।'

जब तक बुद्धि रहती है तब तक अपनापा छूटता नहीं न! और जब तक बुद्धि होती है तब तक वह भेद करती ही है न! वह अपनापा जाए तो अभेद हो पाए। 'अपनापा' गया अर्थात् जुदाई चली गई।

नहीं जुदाई जगत् में किसी से

सारी दुनिया के साथ मुझे ज़रा-सा भी अलगाव नहीं है, उसको (सामनेवाले व्यक्ति को) मेरे साथ अलगाव है। उसमें उसका कोई दोष नहीं है क्योंकि उसमें भेदबुद्धि है, बुद्धि भेद करवाती है। मेरा तो आत्मा के साथ ही व्यवहार है। इसके अलावा आप और क्या हैं, इसके साथ व्यवहार ही नहीं है। आप करोड़ रुपयों के मालिक हैं तो भी मुझे क्या काम है। मुझे तो आपके आत्मा को ही देखना है। करोडवालों को करोड का बोझ, अबजवालों को अबज का बोझ। वे खुद अपना बोझ ढोते फिरें, सिंग जितने भारी होते हैं, उतना बोझ ही है न सारा?

प्रश्नकर्ता : वह तो बुद्धि का परिपाक है न।

दादाश्री : हाँ, बुद्धि का परिपाक है। बुद्धि से सरहदें बना लीं। सारी सरहदें, सारे आकाश की, 'यह फलाँ और यह पंजाब' आदि ऐसी सरहदें घेर लीं, बुद्धि से।

प्रश्नकर्ता : आम तौर पर देखा जाए तो जहाँ ज्यादा बुद्धि होती है वहाँ सरलता कम होती है, और सरलता कम होती है वहाँ हिस्से ज्यादा होते हैं।

दादाश्री : बुद्धि ज्यादा होने पर वह सरलता को खतम कर देती है। मुझमें पहले से बुद्धि कम थी इसलिए बहुत बड़ा फायदा हो गया।

ज्ञान के बाद अभेद दशा बरते। भेद कौन कराता है? बुद्धि करवाती है! यह मेरा और यह तुम्हारा!

बुद्धि कराए भेद

मत, वह संसार के भेद का कारण है और सत् वह अभेद का कारण है।

आत्मा अभेद है, भेदबुद्धि से संसार है। बुद्धि ने भेद दिखलाए, और दिव्यचक्षु हमें अभेद दिखलाए।

स्वच्छंद क्या करे कि जहाँ अभेदबुद्धि उत्पन्न हुई हो वहाँ भेद करा दे। 'ऐसा करने पर ही मेरी क़ीमत होगी' ऐसा करके भेद करा दे। कोई मुझसे रूठा हो तो वह क्यों रूठता है? भेद होने पर। इसे ही 'माया' कही है।

'आत्मदर्शन' होने के बाद भेदबुद्धि नहीं रहती। फिर अभेदता रहती है और 'बुद्धि' को लेकर हरएक के साथ अलग-अलग व्यवहार रहता है। व्यवहार में जो भेद दिखाई देता है वह तो विवेक है। आत्मा प्राप्त करने के बाद ही परम विनय उत्पन्न होता है, फिर अलगाव नहीं लगता, अभेद दृष्टि होती है।

ज्ञानी को कभी नहीं होते 'मैं'-'तू' के भेद

प्रश्नकर्ता : इसलिए ही कहा है न कि ज्ञानी पुरुष तो हरएक जीव को आत्मा के रूप में ही देखते हैं?

दादाश्री : हाँ, वे आत्मा के रूप में और खुद के रूप में ही देखें, अलगाव नहीं लगता उनको। यदि अलगाव रखें तो वे ज्ञानी नहीं। कोई गाली दे रहा हो तो उसके साथ भी अलगाव नहीं रखते, वह बेचारा तो अपनी नासमझी को लेकर गाली देता है! लेकिन समझदार मनुष्य तो ऐसा नहीं करता न? जिम्मेदार व्यक्ति ऐसा बरताव नहीं करता।

विपरीत बुद्धि की शंका, वे सुनते गैबी जादू से,
फिर भी हमें नहीं दँडा, किया नहीं भेद मैं-तू का।

हमारे लिए तरह-तरह की शंकाएँ करने पर भी हमने कभी 'तू ऐसा है, तू वैसा है', ऐसा नहीं कहा है। 'मैं' और 'तू' ऐसे दो भेद नहीं किए हैं। हमें तो 'मैं'-'तू' का विचार ही नहीं होता, इसलिए कवि ऐसा लिखते हैं। उनके अनुभव में आया तभी उन्होंने ऐसा लिखा न!

ज्ञानी का उपयोग कैसा?

सबके साथ मुझे बिठाकर कोई मुझे गालियाँ दे, तब मैं किस उपयोग में रहता हूँ? मैं ही बोलता हूँ और मैं ही सुनता हूँ, ऐसे उपयोग में मैं रहता हूँ। ऑन द मॉमेन्ट, ताकि शुद्धात्मा चलायमान नहीं हो जाए। पहली बात यह कि उसके साथ भेदभाव नहीं रहा है, उपरांत उसके साथ अभेदभाव है, फिर कोई बखेड़ा ही नहीं न? भेद करे तो झँझट पैदा होगी। मारनेवाला और मार खानेवाला, दोनों में भेद ही नहीं। इसलिए बखेड़ा ही नहीं।

रिलेटिव में लघुतम, रिअल में अभेद

हम इस जगत् में दो भाव से रहते हैं। लघुतम भाव और अभेदभाव, ये दो ही हमारी मुख्य सीमाएँ हैं।

हम व्यवहार में लघुतम भाव से रहते हैं। यह मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार आदि जो हैं वह अंत:करण है और क्रोध-मान-माया-लोभ वह सारा व्यवहार है। व्यवहार से हम लघुतम हैं। निश्चय से हम क्या हैं? गुरुतम भाव में हैं। और स्वभाव को लेकर हम अभेद स्वरूप हैं। आपसे हम ज़रा भी जुदा नहीं हुए हैं और किसी दूसरे से भी जुदा नहीं हुए, किसी से भी जुदा नहीं हुए हैं। बड़े आचार्यों से भी जुदा नहीं और यदि यहाँ से कोई गधा जा रहा हो तो उससे भी हम जुदा नहीं हैं। अत: सारे जगत् में कोई मुझे जुदा लगता ही नहीं है। यहाँ मेरे पास जो आए हैं, केवल उतने ही मेरे हैं ऐसा नहीं है। सभी मेरे हैं और मैं सभी का हूँ।

जितनी अभेदता रहती है उतनी निज आत्मा की पुष्टि होती है। सभी से जुदाई मानते हैं इसलिए तो निज आत्मा की सारी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई है न! अभेदता वही शक्ति। मेरे साथ जितनी अभेदता रखेंगे उतनी शक्ति पाएँगे। अभेदभाव उत्पन्न हुआ और उसे एक मिनट मुझे सौंप दिया कि 'मैं ऐसा हूँ, साहब', तो वह अभेदभाव हो गया। उतनी आपकी शक्ति बढ़ गई।

जितनी अभेद दृष्टि, उतने हुए भगवान...

आपको दोषी दिखाई देते हैं उसका यह कारण है कि आपकी दृष्टि विकारी हो गई है। मेरा-तेरा की बुद्धिवाली दृष्टि है। 'यह मेरा और यह तेरा' ऐसे मेरा-तेरा के भेदवाली है। जब तक दोषी दिखाई देता है तब तक कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई है। अभेददृष्टि हुई वह भगवान कहलाए।

यह हमारा और यह तुम्हारा, वे सभी सामाजिक धर्म हैं। इन सामाजिक धर्मों ने तो उलझनें पैदा की हैं। व्यवहार सारा सामाजिक है, और निश्चय अभेद है।

जहाँ अभेद वहाँ नहीं मतभेद

अभेद होने पर मतभेद नहीं होता। सारे जगत् में मेरा किसी के साथ मतभेद नहीं होता है, इसलिए मैं अभेद ही हूँ। आप गालियाँ दें तो भी मुझे भेद

नहीं होता और फूलहार चढ़ाएँ तो भी मुझे भेद नहीं है। जिसे फूल नहीं चाहिए उसे गाली स्पर्श ही नहीं करती। जो देह का मालिक ही नहीं है, उसे मतभेद होता है क्या?

जुदाई मानने से ही यह उलझन पैदा हुई है न? क्या अब आपका किसी के साथ अलगाव रहता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी, मगर वह अलगाव अब निकालना है सारा।

दादाश्री : क्या बात करते हैं? अलगाव निकाले बगैर तो छुटकारा ही नहीं है न! अभेद होना पड़ेगा न! क्या दादाजी के साथ अभेद रहा जाता है?

प्रश्नकर्ता : आपसे अलग हुआ कि अलगाव लगता है।

दादाश्री : और अलग हुआ मतलब उलटा चला। हमारी आपके साथ अलगता नहीं है लेकिन आपकी मेरे साथ अलगता है।

जहाँ नहीं एटिकेट वहाँ सहज भाव

दादा के साथ हजारों मनुष्य अभेद रूप से रहते हैं। वे घरवालों के साथ अभेद हों या नहीं हों, मगर दादा के साथ सभी एक होते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, इतने सारे लोगों की दादाजी के साथ अभेदता रहे यह कैसे संभव होता होगा?

दादाश्री : वही अजूबा है न! और करीबन हजारों मनुष्य अभेदता रखते हैं। हालाँकि ये सभी मनुष्यों के मन संपूर्ण रूप से वश में नहीं बरतते हैं। किंतु तीन-चार हजार मनुष्यों के मन संपूर्ण रूप से वश में बरतते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या आपको यह सब पता चलता है?

दादाश्री : सबकुछ पता चलता है! कि इस मनुष्य का मन संपूर्ण रूप से मेरे वश में बरतता है। मन संपूर्ण वश बरतना मतलब यह कि मैं जो कुछ कहूँ उसके अनुसार उसका मन ऐडजस्ट हो ही जाए।

जहाँ एटिकेट (शिष्टाचार) नहीं होता वहाँ सहजभाव होता है, वहाँ धर्म होता है। जितना सहजभाव हो उतना ही धर्म है। जो सहजासहज हो जाए न, वह धर्म।

मन वश में होता है ज्ञान से

हमारे हिंदुस्तान में किसी पाँच मनुष्यों के मन भी किसी के वश में नहीं बरते हैं। इस पर से अंदाजा लगा लेना! यह तो लोगों को टेस्ट (परीक्षा) लेना नहीं आता है, इसलिए यह बात कैसे समझ में आए? किंतु यदि इस प्रकार टेस्ट लिया जाए तो पता चल जाए।

प्रश्नकर्ता : यह आपने जो टेस्ट रखा, उसमें तो एक भी पास नहीं होगा।

दादाश्री : इसलिए ही यह टेस्ट रखा, वर्ना तो सब यही समझे कि मन अपने वश में होने लगा है।

फिर भी, इस ज्ञान के बाद मन अमुक अंशों में आपके वश में हुआ है। यानी जब इतने सालों में इतना हुआ तो दूसरे इतने सालों में तो फर्राटे से हो जाएगा।

मतभेद मिटाने का उपाय

एक व्यक्ति आकर मुझसे कहने लगा कि, 'हमारे घर में मतभेद रहता है, तो वह कैसे जाए? इसका उपाय बताइए।' मैंने उसे कहा, 'छोटे बच्चों में तो मतभेद होता नहीं है। किंतु ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती जाए त्यों त्यों मतभेद बढ़ते जाए। जिसका अहंकार जागृत है उसे मतभेद हुआ करता है। इसलिए, जिसका ऐसा अहंकार हो उसे रोज़ सबेरे पाँच बार बोलना चाहिए कि, 'हम सब एक ही हैं और हममें जुदाई नहीं है।' ऐसे पाँच बार बोलें और ऐसा तय

करें इसलिए फिर सारा दिन ऐसा रहे। फिर दूसरे दिन फिर से बोलना पड़े, वर्ना जो 'चार्ज' किया था वह पावर उतर जाएगा। घर में यदि तीन सदस्य हों तो तीनों सदस्यों को ऐसा बोलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जिन्हें मतभेद हैं वे सभी इस मुद्दे पर एक मत कैसे हो सकते हैं? उसमें भी यदि मतभेद हो तो?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। तब आप कहें कि ''यदि हम मतभेद मिटाना चाहते हैं, आपको यदि मतभेद पसंद नहीं हो तो हम सभी मिलकर 'दादा' के कहे अनुसार करें।'' तब वे कहें कि 'क्या करेंगे?' तब कहना कि, ''दादाजी ने बताया है कि, 'हम सब एक ही हैं, हम सबमें कोई जुदाई नहीं है।' ऐसा पाँच बार बोलना है।''

प्रश्नकर्ता : 'हम सब एक ही हैं' ऐसा कई लोग बोलते हैं न!

दादाश्री : वह तो ऐसा लगता है किंतु यों अलगता तो रहेगी ही। जब तक यह बात समझ में नहीं आती तब तक अलग ही लगे। मुँह से बोलें सही कि 'हम एक ही हैं', मगर समझ में नहीं आता तब तक अलगता ही बनी रहे। वह समझ में आना चाहिए।

सिद्धांत अभेदता का

प्रश्नकर्ता : कल आपने जो सारी रात (दादाश्री के जनमदिन की अगली रात) प्रतिक्रमण किए, तो उसके पीछे कौन-सा प्रिन्सिपल (सिद्धांत) काम करता है?

दादाश्री : अभेदता का! इन सभी (महात्माओं) के साथ अभेद था। केवल इनके साथ ही नहीं, किंतु सारे शहर के साथ अभेद था। फिर भी किसी ने आँखें भी दिखाई और कई दर्शन भी कर गए। प्रेम देखा आपने सर्वत्र! खुला आत्मा चला था बैठा, बैठा (जब दादाश्री शोभायात्रा के समय बगी में बैठे थे)। खुला आत्मा, बिना देह (भाव) का आत्मा चला! बीच बाज़ार! और लोग आनंद में, आनंद में और आनंद में।

अभेदता वही निदिध्यासन

जिसे 'दादा' का निदिध्यासन रहे उसके सारे के सारे तालें खुल जाएँ (सारी गुत्थियाँ सुलझ जाएँ)। दादा के साथ अभेदता, वही निदिध्यासन! बहुत पुण्य होने पर ऐसा होता है, और 'ज्ञानी' के निदिध्यासन का साक्षात् फल मिलता है। वह निदिध्यासन निज शक्ति को उसके (ज्ञानी के) अनुसार कर दे, उस रूप कर दे। क्योंकि 'ज्ञानी' का अचिंत्य चिंतामणि स्वरूप है, इसलिए तद्रूप बना दे। 'ज्ञानी' का निदिध्यासन निरालंब बनाता है। फिर, 'आज सत्संग नहीं हुआ, आज दर्शन नहीं हुए' ऐसा अंदर उसे नहीं अखरता। ज्ञान खुद निरालंब है, खुद को ऐसा निरालंब हो जाना पड़े, 'ज्ञानी' के निदिध्यासन के ज़रिये।

भेदबुद्धि से खड़ा भेद

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आपने आत्मा के हित के बारे में कहा है, किंतु आत्मा तो निरंतर जागृत है, तो फिर आत्मा के हित की बात कहाँ है?

दादाश्री : हाँ, आत्मा का हित, आत्मा खुद तो जागृत है और संपूर्ण ही है। किंतु वहाँ पर अभेदता उत्पन्न नहीं हुई है। वहीं से भेदबुद्धि हो गई है। भेदबुद्धि, मतलब 'मैं जुदा और आत्मा जुदा।' अभेदता उत्पन्न होने पर तो काम ही पूरा हो गया। 'आत्मा वही मैं हूँ' ऐसा भान हो, तब पूर्ण हो गया।

भगवान के साथ आपने भेद किया, आप भगवान ही हैं मगर भेद किया इसलिए स्वार्थ हुआ। 'यह जुदा और मैं जुदा' यानी स्वार्थ हुआ। अलगाव नहीं हो और अभेदता हो तब तो कोई स्वार्थ नहीं होता।

'मैं ही' में अभेदता रही तो...

जब तक ज्ञानी नहीं मिले तब तक भक्ति माँगना और ज्ञानी मिले तो उनके पास से मोक्ष माँगना, ज्ञानी कायमी हल निकाल दें। भक्त भगवान को क्यों याद करते हैं? तब कहे, आत्मज्ञान के लिए। किंतु आत्मज्ञान वह तो आपका अपना ही स्वरूप है, मगर आपको उसका भान नहीं है न? जगत् में तो सर्वत्र 'तू ही, तू ही' गाते हैं, यानी भक्त और भगवान को अलग मानते हैं। अरे! एकबार 'मैं ही, मैं ही' गाओ न! तो भी आपका कल्याण हो जाएगा। 'तू ही, तू ही' गाने पर कब पार लगे? मगर लोग 'तू ही, तू ही' किस लिए गाते हैं? जब भक्त किसी दु:ख में होता है तब वह भगवान को याद करता है। यानी, व्यग्रता में 'तू' (भगवान) था इसलिए अब 'तेरे' में ही एकाग्रता करते हैं, इसलिए 'तू' गाते हैं। मगर ऐसे 'तू ही' गाने से कोई फायदा नहीं है। 'मैं ही', ऐसा गाने से काम होगा। 'तू ही' में तो 'तू' और 'मैं' का भेद (अंतर) रहता है इसलिए आखिर तक भक्त और भगवान दोनों अलग ही रहते हैं। जब कि 'मैं ही' में अभेदता रहे। खुद ही परमात्मा स्वरूप हो जाए।

फिर कृष्ण के साथ आप और आपके साथ कृष्ण, बस एक ही रूप होते जाएँ। अभेदता उत्पन्न होती जाए। ज्यों ज्यों संसार छूटता जाए, आपका प्रारब्ध कम होता जाए, त्यों त्यों अभेदता उत्पन्न होती है। प्रारब्ध की जागृतिपूर्वक निर्जरा होने पर अभेद हो जाएँ।

जब तक आप भक्त हैं तब तक भगवान अलग हैं। भक्त और भगवान एक होने पर काम पूर्ण होता है। मूर्त के दर्शन करने से मूर्त हो सकें और अमूर्त को भजने से अमूर्त हो सकें, उससे मोक्ष मिले। स्वरूप में रमणता वह चारित्र है। शुद्ध दशा से अभेदता लगे, आत्मवत् सर्वभूतेषु लगे, जो निरा शुद्ध ही है। दीप, वह ज्योत नहीं है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और सुख उत्पन्न हुआ वही ज्योत है। ज्ञाता-द्रष्टापन वही कृष्ण है। दृश्य के कृष्ण, वह कृष्ण नहीं है।

वीतरागों को अभेदता सभी के संग

जैन, वैष्णव, शैव, स्वामीनारायण आदि सभी रिलेटिव धर्म हैं, स्टैन्डर्ड (कक्षा) के धर्म हैं। व्यू पॉइन्ट के धर्म हैं। जिसे जो व्यू पॉइन्ट से दिखाई दिया उसको ही सही मानकर बैठ गए और उसी पक्ष में जुड़ गए। मोक्ष कब होता है? सच्चा सम्यक्त्व, सम्यक् दर्शन कब होता है? सारे जगत् में कहीं किसी के साथ पक्षापक्षी नहीं हो, मतभेद नहीं हो, तब। पक्ष में पड़े हुओं का मोक्ष नहीं होता। पक्ष क्यों बनते हैं? अहंकारी अपना अहंकार पोसने के लिए पक्ष खड़े करते हैं। निरहंकारी ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' सभी को एक करते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' निष्पक्षपाती होते हैं, वीतराग निष्पक्षपाती होते हैं। उन्हें किसी जात-पाँत के साथ पक्ष नहीं होता, संपूर्ण निष्पक्षपाती। हरएक मनुष्य के साथ अभेदता। अरे! एक छोटे से छोटा जीव रहा तो उसके साथ भी वीतरागों को अभेदता होती है।

सच्चिदानंद स्वरूप की भजना से कल्याण

(ज्ञानी पुरुष खुद सच्चिदानंद स्वरूप होते हैं इसलिए) सच्चिदानंद यदि समझकर गाएँगे तो उनका भी कल्याण हो जाएगा। क्योंकि वह शब्द ही निष्पक्षपाती है। अनादि से जीव पक्ष में ही पड़ा है इसलिए पक्ष का ही रुख़ हो गया है। केवल ज्ञानी की वाणी में ही पक्षपात नहीं होता। वाणी, वर्तन, विवेक मनोहारी होते हैं। अभेदता का ज्ञान और भान होता है, वही परमात्मा।

भेदबुद्धि से अलगाव

प्रश्नकर्ता : यहाँ आपके पास यह बात जानकर बड़ा आनंद आया।

दादाश्री : आनंद तो होगा न! आत्मा की बात

निकले तभी से आनंद होता है। हमें अलगाव नहीं है लेकिन आपको ऐसा लगे कि अलगाव है। मुझमें बुद्धि नहीं है इसलिए मुझे अलगाव नहीं लगता है। लेकिन आपमें तो बुद्धि है न, इसलिए बुद्धि भेद करवाती है। यानी यदि बुद्धि कम हो जाए और अलगाव नहीं लगे, तो बहुत अच्छा लगे।

भेदबुद्धि होती है तब तक अलगाव लगे, कि 'मैं चंदुलाल और यह रायचंद' और इसी तरह 'महावीर अलग, नेमीनाथ अलग, कृष्ण अलग', सभी में भेद लगे और 'ज्ञानी पुरुष' को भेदबुद्धि नहीं होती, वे आत्मस्वरूप में रहते हैं और सर्वत्र अभेद देखते हैं।

ज्ञानी पुरुष के साथ किसी को अलगाव लगता ही नहीं। क्योंकि उनका मन सारे जगत् के लिए एक ही होता है। मुझे किसी के साथ, कुत्ते के साथ भी अलगाव नहीं है न। यह गधा है ऐसा भी अलगाव मुझे नहीं है, क्योंकि उनमें जो आत्मा रहा हुआ है वह 'मैं' ही हूँ। सर्वत्र 'मैं' ही हूँ तो फिर मुझे अलगाव किस के साथ रहेगा? इसके साथ भी नहीं और उसके साथ भी नहीं, किसी के साथ नहीं।

मुझे तो सभी में मैं ही बैठा हुआ हूँ ऐसा रहा करे। रिअल स्वरूप जान लें इसलिए अभेदता हो जाए। जहाँ अभेदता रहे वहीं सच्ची वस्तु है और जब तक बुद्धि है वहाँ सच्ची वस्तु नहीं होती है।

ज्ञानी मिले तो निकले हल

वीतराग निष्पक्षपाती होते हैं, उनको सबके साथ अभेदता लगती है। कालचक्र के आधार पर लोग मार खाते रहते हैं, यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिलें तब फिर मार नहीं खानी होती, ज्ञानी मिले तो हल निकल आए।

'ज्ञानी पुरुष' के दर्शन करने से मन अच्छा होता है, मन मज़बूत होता है, वाणी अच्छी होती है, विचार अच्छे होते हैं। उनके दर्शन करने से ही पाप धुल जाते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' की हाज़िरी से ही परिवर्तन हो जाता है। मैंने कोई बड़ा उपदेश नहीं दे दिया है, फिर भी वातावरण से परिवर्तन हो जाता है।

अभेद के पास हो अनुभव अभेदता का

प्रश्नकर्ता : इसलिए तो दादाजी के पास आने के बाद इतना सारा आनंद अनुभव में आता है।

दादाश्री : तब फिर दादाजी के पास कितना आनंद होगा?

प्रश्नकर्ता : यह पानी जो आता है जब वह इतना सारा है, तो फिर इसका मूल स्त्रोत कितना बड़ा होगा? किंतु इसकी विशेषता यह है कि दादाजी के पास आनेवाले को, चाहे कुछ भी हो, मगर अभेदता ज़रूर लगती है।

दादाश्री : सभी के साथ खुद अभेद रहते हैं, इसलिए। क्योंकि हमारी दृष्टि अभेद हो गई है। किसी में दोष देखते नहीं है न! दोष देखा कि अलगाव हो गया।

प्रश्नकर्ता : मगर दादाजी, यह अभेदता जो लगती है वह इस प्रत्यक्षता के कारण ही है न?

दादाश्री : और नहीं तो क्या? जो चले गए हैं (सिद्धक्षेत्र में हैं), उनके साथ अभेदता क्या करनी है? जो चले गए हों उनका रटन कौन करे? वे सुनते भी नहीं और हमें लेना-देना भी नहीं है। जो चले गए हैं, उनका क्या करने है हमें? वे तो सिद्ध होकर बैठ गए। उन्हें अब हम कहें कि 'अब मैं आपका हाथ थामने क्यों आऊँ? मेरा क्या हो? यदि हाथ थामने आऊँ तो मेरा हाथ आप थामेंगे नहीं और आप तो अलग ही रहेंगे और मैं भटक मरूँगा। मैं तो यहाँ, मेरा हाथ जो थामेंगे उनका हाथ थाम लूँगा। मुझे आपकी ज़रूरत नहीं है।' वे जो वहाँ जा बैठे हैं, उनको ही आपकी ज़रूरत नहीं है। आप कहना कि 'हमारे ज़रूरतवाले, दादाजी हैं यहाँ पर, उनसे मिलूँगा, उनके साथ आऊँगा।'

प्रश्नकर्ता : मैं ही दादाजी में और दादाजी ही मुझमें!

दादाश्री : दादाजी ही आपमें बैठे हैं। इसलिए हमारी अभेदता ही हुई न! मुझे और कोई जुदाई तो है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो', उसमें यदि दो मिनट एकाकार हो जाए तो कई दु:ख कम हो जाएँ न?

दादाश्री : अनंत जन्मों के दु:ख कम हो जाएँ। केवल एकाकार ही नहीं किंतु यह तो अभेदता हो गई! संसार में व्यावहारिक अभेदता होती है स्त्री और पुरुष के बीच, मगर जब दोनों आपस में लड़ें तब? और दादाजी के साथ तो निश्चय की अभेदता उत्पन्न होती है। इसलिए दादाजी की जो मिल्कियत है वही आपकी मिल्कियत हुई।

अभेदता वहाँ अभयदान

प्रश्नकर्ता : आपके पास ऐसे लोग भी आते हैं कि जो अपने पिछले दोषों की आपके पास आलोचना करते हैं, तो आप उन्हें उसमें से छुड़वाते हैं न?

दादाश्री : ऐसा कब संभव है, यह आप जानते हैं? अभेदता होती है, तब। ऐसी हिम्मत कब आती है? अभेदता होती है, तब। चाहे कैसे भी दोष क्यों नहीं हुए हों, सारे दोषों को नष्ट करने को मैं तैयार हूँ। आपके लाखों दोषों को मैं एक घंटे में नष्ट कर देने को तैयार हूँ, मगर आपकी तैयारी चाहिए। निर्दोष को दोष कैसे छूए? मेरे पास आलोचना करे मतलब मेरे साथ अभेद हुआ कहलाए। हमें तो उसे छुड़वाना ही पड़े।

अपनी एक निजी बात करनी हो तो भी लोग वह बात क्यों नहीं कर पाते? क्योंकि फिर सामनेवाला उसे धमकाता फिरे, क्योंकि लगाम हाथ में आ गई न! धमकाए या नहीं धमकाए? और हम उसे धमकाने हेतु कुछ नहीं करते हैं। हम उसे मुक्त करना चाहते हैं कि मैं तेरे हर गुनाह तुझे माफ कर दूँगा, यहाँ 'दादा भगवान' प्रकट हुए हैं। जगत् में सबसे बड़ा वाक्य ही इतना है। यही बात समझने जैसी है कि, 'हमारे पास आलोचना करे और कर्म भस्मीभूत हो जाएँ।' क्रमिक मार्ग अलग वस्तु है और यह अभेद, अभेदधर्म है, भेद ही नहीं, अलगाव ही नहीं!

जितनी मात्रा में हमारे पास वह दोष को ज़ाहिर करे उतनी मात्रा में वह हमारे साथ अभेद हुआ, और जितना अभेद हुआ उतना (आत्मा का) स्पष्ट अनुभव होता है।

स्पष्टवेदन हुआ मतलब वह परमात्मा ही हो गया कहलाए। जिसको सांसारिक दु:ख का अभाव बरते, कपट निकल जाए इसलिए अंदर स्पष्ट अनुभव होने लगे। कपट को लेकर अनुभव अस्पष्ट रहता है।

मिटे भेद जीव-शिव का ज्ञानी द्वारा

प्रश्नकर्ता : यह भेद मिटाने की क्रियाएँ सूक्ष्म होती हैं? ज्ञानी सूक्ष्म देह से उसे जान सके?

दादाश्री : ऐसा है, 'ज्ञानी पुरुष' खुद आगे जानने के लिए सबकुछ कर सकें। 'ज्ञानी पुरुष' को जीव-शिव का भेद मिट गया होता है। फिर भी, उससे आगे का जानना हो तो अन्य सूक्ष्म रूप से वे आगे का सबकुछ जान सकते हैं। बाकी, तापस कुछ जान नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : वहाँ फिर स्वामी और सेवक का भेद रहे या नहीं रहे?

दादाश्री : फिर भेद नहीं रहता, अभी भेद रहता है। 'भगवान और मैं', ऐसे दो भेद रहें। जीव-शिव का भेद नहीं रहता। वही का वही जीव है, वही का वही शिव है, किंतु उसका भेद मिट जाता है। क्या आपको भेद मिटाना है? भेद मिटाने की इच्छा होती है?

प्रश्नकर्ता : मैंने आत्मा से ऐसा कह दिया है कि भेद मिटाए बगैर तो तेरा छुटकारा ही नहीं है।

दादाश्री : हाँ, बराबर है। भेद मिटाने पर ही छुटकारा है, और असल ज्योति स्वरूप हो जाए, निज स्वरूप में तन्मयाकार हो जाए तब शिवरूप होता है। जब तक शिवरूप नहीं होता तब तक भीतर भगवान के साथ अभेदता नहीं होती।

इच्छा, एक अभेदता की ही

(यह सब पसंद आता है क्या?)

प्रश्नकर्ता : खुद को छूटना है इसलिए पसंद है।

दादाश्री : छूटना है कि दादाजी के साथ अभेद होना है?

प्रश्नकर्ता : निज दोषों से छूटना है इसलिए पसंद है। दादाजी के साथ तो अभेदता ही चाहिए।

दादाश्री : दादाजी के साथ अभेदता अर्थात् छूटना ही होता है। अन्यथा, किसी के पास आप चाहे कितनी ही क्षमापना माँगते रहें तब भी व्यर्थ है।

ऐसा यह अक्रम विज्ञान है

यह गुरु का मार्ग नहीं है। यह कोई धर्म या संप्रदाय नहीं है। मैं तो किसी का भी गुरु हुआ नहीं हूँ, होनेवाला भी नहीं हूँ। मेरे लक्षण ही गुरु होने के नहीं हैं। जिस पद में मैं बैठा हूँ, उसी पद में आपको बिठाता हूँ। गुरुपद-शिष्यपद मैंने रखा ही नहीं है। वर्ना सब जगह तो लगाम अपने पास रखते हैं। जगत् का नियम कैसा है? लगाम (खुद की विशेषता) छोड़ते नहीं हैं। मगर यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ तो हम जिस पद में बैठे हैं उसी पद में आपको बिठाता हूँ। हम सभी में जुदाई नहीं है। आपमें और मेरे में कोई जुदाई नहीं है। आपको ज़रा अलगाव लगे, किंतु मुझे अलगाव नहीं लगता, क्योंकि आपके अंदर मैं ही बैठा हूँ, उनमें भी मैं बैठा हूँ। फिर मुझे अलगाव कहाँ रहा?

और सच पूछिए तो गुरुपूर्णिमा होती ही नहीं। यह तो गुरुपूर्णिमा मनाने के खातिर ही मनाते हैं, केवल दर्शन करने के निमित्त से। बाकी यहाँ गुरुपूर्णिमा नहीं होती। 'गुरु' भी नहीं होते और 'पूर्णिमा' भी नहीं होती। यह तो लघुतम पद है। यहाँ तो आपका ही स्वरूप है यह सारा, अभेद स्वरूप है।

हम जुदा हैं ही नहीं न! गुरु होन पर, आप शिष्य और मैं गुरु ऐसे दो भेद हुए। मगर यहाँ गुरु-शिष्य कहलाते ही नहीं न! यहाँ गुरु भी नहीं है और शिष्य भी नहीं है। यहाँ गुरु-शिष्य का रिवाज़ ही नहीं है। क्योंकि यह तो अक्रम विज्ञान है!

आत्मज्ञान के ज़रिये प्राप्त अभेदता

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि '१९५८ में जब मुझे ज्ञान हुआ तब मैं दादा भगवान के साथ अभेद हो गया था, फिर मुझे भेद हो गया तब ख्याल आया कि दादा भगवान का ऐश्वर्य कैसा है!' वैसे ही आप जब हमें ज्ञान प्रदान करते हैं तब हमें भी हमारे...

दादाश्री : आपको समझाया है कि 'चंदु' जुदा और 'मैं' जुदा, मतलब हक़ीक़त में 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा दादा कहते हैं, वह प्रतीति बैठ गई है।

प्रश्नकर्ता : मतलब, आप जब ज्ञान देते हैं तब क्या हमें भी वैसी अभेदता का स्पर्श हो जाता है?

दादाश्री : अभेदता होती है तब तो आप मेरे पीछे पड़ते हैं वर्ना पड़ते नहीं न! मुझे आपको बुलाने नहीं आना पड़ता है। आपने उस दिन (ज्ञानप्राप्ति के दिन) जो सुख चखा है, वही आपको यहाँ खींच लाता है।

प्रश्नकर्ता : और उस समय जो अभेदता हो गई, उसके बाद (देह और आत्मा) जो अलग हो

जाते हैं, तब उस समय का ऐश्वर्य दिखाई देता है।

दादाश्री : वह ऐश्वर्य-आनंद सब चखा है इसलिए अब वैसा ही खोजते रहते हैं। अत: ऐसा करते-करते वह सारा (डिस्चार्ज माल) खतम हो जाएगा और ऐसा (ऐश्वर्य प्रकट) हो जाएगा।

आत्मा के संग अभेदता

'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका लक्ष्य निरंतर रहता है?

प्रश्नकर्ता : निरंतर रहता है, दादाजी।

दादाश्री : वह आत्मध्यान कहलाता है। वह शुक्लध्यान कहलाता है। 'शुक्लध्यान वह प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है।' वर्ना घड़ीभर के लिए भी आत्मा याद नहीं रहता। एक व्यक्ति था, वह आत्मा जानकर आया। फिर दूसरे दिन वह मन में याद करने लगा कि 'वह कौन-सा शब्द था? वह कौन-सा शब्द था?' लेकिन कुछ समय तक उसे याद नहीं आया। ऐसे, याद रखनी पड़े ऐसी चीज़ नहीं है यह। यह तो साक्षात्कार है और अभेदता है।

अभेदता की प्राप्ति का अर्थ क्या?

प्रश्नकर्ता : 'संपूर्ण अभेदता प्राप्त हो' ऐसा चरण विधि में हम माँगते हैं, तो वह अभेदता यानी क्या?

दादाश्री : अभेदता यानी तन्मयाकार। हम भगवान के साथ एक हो जाएँ। अभी जो अलग है न, शुद्धात्मा और आपमें कितना भेद है? अभी प्रतीति को लेकर आप शुद्धात्मा हुए हैं, संपूर्ण श्रद्धा बैठ गई, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका विश्वास हो गया, थोड़ा अनुभव हुआ किंतु तद्रूप नहीं हुए हैं। इसलिए, 'तद्रूप कर दीजिए' ऐसा भगवान से कहते हैं, वह अभेदता।

प्रश्नकर्ता : मतलब बिलकुल भेद नहीं।

दादाश्री : अभी भेद है, मुझे अभी आपको शुद्धात्मा की जागृति में लाना पड़ता है। किंतु 'तद्रूप' हो जाने के बाद फिर ऐसा नहीं करना पड़े, ऐसे अभेद होना है।

प्रश्नकर्ता : 'शुद्धात्मा' के साथ 'अहंकार' अभेद होता है न?

दादाश्री : नहीं, अहंकार नहीं। व्यवहार का निपटारा करने के लिए जो प्रज्ञा अलग हुई है, वह अब (आत्मा के साथ) एक हो जाए मतलब काम पूरा हो गया।

प्रश्नकर्ता : कौन किसके साथ अभेद होता है?

दादाश्री : प्रज्ञा और शुद्धात्मा। दोनों जो अलग हैं वह एक हो जाएँ। इस समय 'मैं-पन' प्रज्ञा में बरतता है। अब वह 'मैं-पन' अहंकार में नहीं बरतता। मतलब, 'मैं' जो चंदुभाई में बरतता था तब वह अहंकार में कहलाए। किंतु अब प्रज्ञा में बरतता है। यानी (पूर्णरूप से) शुद्धात्मा नहीं है, इसलिए उसे 'अंतरात्मा' कहा जाता है।

हमारी यह प्रज्ञा आत्मा में करीबन स्थिर हो गई हो ऐसी ही होती है। इसलिए हमें शुद्धात्मा बोलना नहीं पड़ता या कुछ सोचना नहीं पड़ता और उस रूप में अभेदता जैसा ही लगता है। ज़रा-सा शेष रहा है, चार अंश को लेकर। और आपको तो अभेद होना है। धीरे-धीरे इन फाइलों का ज्यों ज्यों निपटारा होता जाए त्यों त्यों अभेद होते जाएँ। फाइलों का पूर्ण रूप से निपटारा हो गया कि अभेद हो गए। फाइलों की ही झँझट है सारी। मगर वह (शुद्धात्मा) जो है वह आपमें प्रज्ञा स्वरूप में है और प्रज्ञा वह भगवान (आत्मा) का अमुक हिस्सा है। जब (मोक्ष का) कार्य पूरा हो जाएगा तब फिर प्रज्ञा एक हो जाएगी। भगवान और आत्मा एक ही हैं। भौतिक से अलग होकर जब अपने स्व-स्वरूप में रहते हैं तब परमात्मा कहलाते हैं। निरंतर स्व-स्वरूप की रमणता, वही

परमात्मा। और जहाँ स्व-स्वरूप की रमणता भी है और यह (सांसारिक) रमणता भी है, तब तक वह अंतरात्मा है, वही प्रज्ञा।

बुद्धि से भेद, प्रज्ञा से अभेद

प्रश्नकर्ता : यह जो अभेदता होती है वह सबसे उच्च कक्षा की बुद्धि कहलाए या नहीं?

दादाश्री : नहीं, वह अभेदता यानी बुद्धि का अभाव, वह ज्ञानभाव है। ज्ञान से सभी एक हैं और बुद्धि से अलग-अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वहाँ प्रज्ञा होती है या नहीं?

दादाश्री : वही है न! प्रज्ञा से सभी एक ही हैं मगर बुद्धि से हम अलग-अलग हैं। मैंने खुद में से बुद्धि को खलास की थी। जैसे-तैसे करके मैंने उसे निकाला ही था। जैसे जैसे उदय आता गया वैसे वैसे निपटारा करता रहा। उदय का संग्रह नहीं किया। मूल रूप से तो पिछले जन्म में ही उसे (बुद्धि को) निकाल दी थी, इसलिए इस जन्म में निकालनी नहीं पड़ी, पहले निकाल चूके थे।

जब तक दोष हैं तब तक वह पूर्णदशा नहीं कहलाए! सारे दोष चले जाएँ तभी खुद की पूर्णदशा उत्पन्न होती है। तब तक भले ही चाहे सूक्ष्मतम दोष हो, किंतु दोष है तब तक खुद की पूर्णदशा नहीं कही जाए। ऐसा कहना जोखिम है। यदि समझदारी नहीं रही तो लोग ऐसा जोखिम मोल लें, किंतु समझदार मनुष्य तो ऐसी जोखिमदारी नहीं लेगा न!

'निपटारा' शब्द का असर

प्रश्नकर्ता : 'फाइलों का निपटारा', इसमें आपने 'निपटारा' शब्द का जो प्रयोग किया है, इसका मनुष्य पर साइकोलॉजिक इफेक्ट ही होता है। यह 'निपटारा' शब्द ही ऐसा है।

दादाश्री : 'निपटारा' शब्द का इफेक्ट ही होता है। ये एक-एक शब्द इफेक्टिव है। सिर्फ 'निपटारा' ही नहीं, 'रिअल और रिलेटिव' शब्द तो बहुत ही इफेक्टिव हो जाते हैं मनुष्य पर। मतलब ये सारे शब्द इफेक्टिव हैं और 'निपटारा' तो बहुत बड़ा शब्द है। इस एक-एक शब्द का केवल आज ही नहीं किंतु आगे जाकर भी पृथक्करण होगा।

'निपटारा' शब्द अच्छा लगता है न? यह 'निपटारा' शब्द शास्त्र में कहीं नहीं है। किसी शास्त्र में होगा नहीं न! 'समभाव से निपटारा करना' यह अक्रम विज्ञान का प्रताप है। और लोग तो इस विज्ञान से बहुत खुश हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : यह 'निपटारा' शब्द इस्तेमाल करने के बाद किसी जगह पकड़ नहीं रहती, वर्ना सर्वत्र पकड़ रहती थी।

दादाश्री : हाँ, पकड़ ही होती है और यह तो नहीं ग्रहण, नहीं त्याग, निपटारा! हमारे इस 'समभाव से फाइलों का निपटारा' में जप-तप-त्याग सबकुछ आ जाता है। समभाव से निपटारा का मतलब ही ऐसा है कि वह आत्मा को आत्मा बनानेवाला है।

यों ही कोई बातें करता हों कि 'अब इन दुकानों का सारा निपटारा कर डालना है' तो भी समझ में आ जाए कि निपटारा यानी क्या करना चाहते हैं और फिर उसका कैसा परिणाम होगा यह भी सबकी समझ में आ जाए। 'निपटारा' शब्द बोलते ही समझ जाएँ और 'बेच देना है' कहें तो समझ में नहीं आता, क्योंकि (ऐसा विचार आता है कि) क्या सामान होगा और बेचना किसे कहते हैं? किन्तु 'निपटारा' कहे कि तुरंत समझ जाएँ कि अब 'निपटारा' कर डालने का है।

'निपटारे' की (बाबत) मतलब तेरी भी निपटारे की और उसकी भी निपटारे की, सभी के लिए 'निपटारा' ही है। 'हम' (आत्मा) जुदा और

यह निपटारे का (संयोग) जुदा। इसलिए अभेदता उत्पन्न होती है। यह इतनी साइन्टिफिक वस्तु है कि यदि फ़ॉरिन के साइन्टिस्ट्स मुझे मिल गए और वे जब इसका पृथक्करण करेंगे तो बात ज्यादा समझ में आएगी। यदि ऐसा संयोग मिल गया तो मैं उन साइन्टिस्टों को आगे की सारी रूपरेखा दूँगा। (स्वरूपज्ञान के पश्चात्) पत्नी, बच्चे, सब निपटारे की बाबत है, वह ग्रहणीय बाबत नहीं है। वर्ना, त्याग की बाबत हो तो भी वह लगाव हुआ। ग्रहण की बाबत हो तो भी लगाव ही हुआ न! केवल जो निपटारे की बाबत है उसका लगाव नहीं रहता।

वक्ता-श्रोता का संबंध, अभेदता का

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में आप वक्ता हैं, जो जगत् का कल्याण करे ऐसे हैं, और हम श्रोता हैं, उन दोनों के बीच का संबंध कैसा होता है?

दादाश्री : अभेदता का संबंध होता है, व्यक्ति खुद ही अभेद हो इसलिए अभेदता का ही संबंध होता है।

प्रश्नकर्ता : जब वह अभेदता का संबंध सँभलता है तब क्या वक्ता और श्रोता होते हैं?

दादाश्री : हर व्यक्ति डिज़ाइन में (देह रूप में) अलग दिखता है। जैसे कि फोटो में सभी व्यक्ति अलग-अलग दिखते हैं, ऐसे। सबकुछ फोटो ही तो है। वर्ना (आत्मभाव) से एक ही हैं सब। मगर फोटो (देह) को लेकर सब अलग दिखता है। स्पेस अलग होने से अलग-अलग दिखता है।

प्रश्नकर्ता : मगर उस फोटो (देह) में हम (शुद्धात्मा) कहाँ तक संलग्न रहे?

दादाश्री : जब तक (अहंकार के) विकल्प हैं तब तक फोटो (देह) है। निर्विकल्पी (शुद्धात्मा) हुए, इसलिए निर्विकल्पी की फोटो तो होती है, मगर वह फोटो जाती हुई (देह डिस्चार्ज में पूरी हो रही) होती है। जाती मतलब परिणामरूप (इफेक्ट) में होती है, उस घड़ी कॉज़ (कारण) के रूप में नहीं होती है। नयी फोटो नहीं छपवाई होती (भावकर्म बंद हो गया होता है)।

प्रश्नकर्ता : जो व्यक्ति निर्विकल्प वक्ता है, उनकी और श्रोता के बीच अभेदता होती है। मगर श्रोता को अपने रोज़मर्रा के जीवन में उलझनें होने पर, उस अभेदता का असर ज्यादा क्यों नहीं रहता है?

दादाश्री : निरंतर असर रहता है, एक क्षणभर के लिए भी कम नहीं हो ऐसा।

प्रश्नकर्ता : आपका ऐसा सामान्य अनुभव है क्या?

दादाश्री : सामान्य अनुभव से ही बोलता हूँ यह।

प्रश्नकर्ता : आपके लिए नहीं, श्रोताओं के लिए।

दादाश्री : हाँ, श्रोताओं की ही बात करता हूँ। मेरे साथ श्रोताओं को तो निरंतर अभेदता रहती है। श्रोताओं ने निरंतर 'एक भाव' (शुद्धात्मा भाव) को पाया हैं। यह तो वास्तविकता है, हक़ीक़त है। यह कुछ पोलम्पोल नहीं है।

तीर्थंकरों की अभेदता कैसी?

प्रश्नकर्ता : इस काल में यदि आप उपदेश करें तो क्या वह सबको काम आ सकता है?

दादाश्री : ऐसा है कि उपदेश हम कभी एक क्षणभर के लिए भी नहीं करते हैं। उपदेश तो अहंकारी करें। हममें अहंकार नहीं है न, इसलिए देशना होती है।

प्रश्नकर्ता : आपकी देशना है, यह आपने किस आधार पर कहा?

दादाश्री : क्योंकि हम वाणी के मालिक नहीं

हैं न! अट्ठाइस साल से यह वाणी निकला करती है लेकिन हम उसके मालिक नहीं हैं। भगवान भी वाणी के मालिक नहीं होते और क्रमिक मार्ग में तो अंत तक वाणी के मालिक होते हैं। वहाँ तो जब तक बारहवें गुणस्थान में नहीं पहुँचे तब तक वह देशना नहीं कही जाती। क्योंकि बारहवें गुणस्थान में आने पर अंतिम अहंकार चला जाता है, और हम तो निरहंकारी हैं इसलिए हमारा यह उपदेश नहीं कहलाता।

हमारे में अहंकार बिलकुल नहीं होता इसलिए हम कहते हैं न कि हमारा यह (वाणी) टेपरिकार्ड में से निकलता है। किंतु वह भी, आप प्रश्न पूछे उतना ही हमारे पास से निकलता है। यह रिकार्ड बजता है उसे आप भी सुनते हैं और हम भी सुनते हैं। इसमें 'ऐसा कीजिए या वैसा कीजिए' ऐसा हमारा आग्रह नहीं होता है। देशना में किसी प्रकार का आग्रह नहीं होता है। हमारा कोई दबाव नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें ऐसा होता है कि सारे परिणाम दिखलाए?

दादाश्री : हाँ, सब दिखलाए। हिताहित सब दिखलाए। सारा नक्शा सबकुछ बतलाए। लेकिन तुझे अनुकूल हो तो यह कर वर्ना वह कर।

अत: देशना दो की ही होती है। एक, तीर्थंकर भगवान की देशना होती है और दूसरे, भेदविज्ञानी पुरुष की देशना होती है। मगर मुझे इसमें 'मैं' और 'आप' ऐसे भेदयुक्त ख्याल के साथ रहती है। और तीर्थंकरों को ऐसा भेद का ख्याल नहीं होता। उनको अभेदता रहे, वीतरागता रहे। मतलब हमारा कहाँ पर कच्चापन है यह हमारा रहस्य हमने खुला किया।

कैवल्यज्ञान होने के बाद महावीर भगवान जो बोले वह ऑरिजिनल टेपरिकार्ड बोलता था और हमारा भी यह ऑरिजिनल टेपरिकार्ड बोलता है। क्रमिक मार्ग के ज्ञानी जो बोलें वह ऑरिजिनल टेपरिकार्ड नहीं होता है। वे तो खुद ही बोलते हैं, 'मैं ही बोला' ऐसा कहेंगे। हालाँकि उनका ज्ञान चला नहीं जाता, वे क्रमिक मार्ग के ज्ञानी ही कहलाएँ। मगर कहेंगे कि 'मैं बोला, मुझसे खराब बोला गया, मुझसे अच्छा बोला गया।'

क्रमिक मार्ग में अभेदता कैसे पाएँ?

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में तो भेद करके चलना है, तो वहाँ अभेदता कैसे होती है?

दादाश्री : वहाँ भी अभेदता होती है, रास्ता है! और उस रास्ते कई गए भी हैं।

अर्थात् जिन्हें आत्मज्ञान हुआ है उनके लिए यह (अभेदता) शब्द है, दूसरे ऐसा नहीं बोल सकते। ये सारे जैन पारिभाषिक शब्द जो हैं, वे अंतिम दशावाले ही बोल सकते हैं । क्रमिक मार्ग के ज्ञानी पुरुष भी इन शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि, यदि वे साठ प्रतिशत के ज्ञानी हों तो भी चालीस प्रतिशत अहंकार खुला होता है। चालीस प्रतिशत जो शेष रहा है (जो मान्यताएँ शेष रही हैं) उसका अहंकार होता है। अर्थात्, तब तक 'व्यवस्थित' नहीं बोल सकते। क्योंकि अहंकार दख़ल किए बगैर रहता नहीं। 'मुझे अभी इतना करने को शेष रहा' वे ऐसा कहें। उनको करने को रहा और 'यहाँ' (अक्रम विज्ञान में) करने को नहीं होता कुछ। 'व्यवस्थित' तो, अहंकार खलास हो जाए बाद में 'व्यवस्थित' बोला जाए। अर्थात् हम यहाँ इन सभी का अहंकार बंद करने के बाद 'व्यवस्थित' (शब्द) देते हैं।

क्रमिक मार्ग में पुरुष (आत्मा) के तौर पर कर्त्ता नहीं होते हैं और हमारे अक्रम विज्ञान में तो पुरुष (आत्मा) के तौर पर सभी कर्त्ता हुए हैं। प्रकृति अलग और पुरुष अलग, पुरुष के तौर पर कर्त्ता हुए। जब कि क्रमिक मार्ग में पुरुष (आत्मारूप) होते नहीं है न! वहाँ तो अंत में पूर्णता होने पर पुरुष (आत्मरूप) होते हैं।

टीका वहाँ नहीं अभेदता

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में लिखा है कि 'हमारी टीका करने का लोगों को आधिकार है, किंतु हमें किसी की टीका करने का अधिकार नहीं है।' यहाँ निंदा और टीका में क्या अंतर है?

दादाश्री : टीका यानी, किसी के प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले दोषों को ऑपन (खुला) करना, वह टीका कहलाए। और निंदा यानी दिखाई देनेवाले और नहीं दिखाई देनेवाले, सभी दोषों के बारे में बोलते रहना, उस व्यक्ति के बारे में उलटा ही बोलते रहना, वह निंदा कहलाए। फिर आगे पढ़िए।

प्रश्नकर्ता : 'किसी की ज़रा-सी भी टीका की तो वह कैवल्यज्ञान को बाधक है। अरे! आत्मज्ञान को भी बाधक है, सम्यक्त्व को भी बाधक है।'

दादाश्री : किसी की टीका करने पर वह उसकी आराधना की टीका की कहलाए, वह भयंकर गुनाह है। आप सामनेवाले का समर्थन नहीं कर सकें तो कोई हर्ज नहीं, मगर टीका तो करना ही नहीं। टीका हर तरह से बाधक है। टीका करने की फुरसत ही नहीं होनी चाहिए।

आज तो लोग आपकी भी टीका करते हैं। 'खुद क्या कर रहे हैं' इसका भान नहीं है बेचारों को, इसलिए ऐसा करते हैं। दु:खवाला ही किसी की टीका करता है। सुखिया मनुष्य किसी की टीका नहीं करता। दु:खिया लोग यदि टीका करना चाहें तो भले ही करें, उससे उन्हें आनंद रहता हो तो करें।

नहीं दिखता दोषी कोई इस जग में

आपको समझ में आए, इसलिए हम यह दूसरे लोगों की बात करते हैं। उनकी टीका करने के लिए नहीं करते। टीका होनी ही नहीं चाहिए किसी जगह और यदि टीका है तो वीतराग का विज्ञान नहीं है। वहाँ धर्म है ही नहीं, अभेदता है ही नहीं।

मेरा किसी के साथ अलगाव नहीं होता। साधुओं के साथ भी नहीं होता, किंतु मुझे हक़ीक़त बतानी पड़े कि इस फूल में सुगंध है और इस फूल में सुगंध नहीं है।

हम तो दुनिया से एक क्षणभर के लिए जुदा रहे नहीं हैं। किसी जीव के साथ, छोटे से छोटे जीव से लेकर किसी के साथ अलगाव नहीं है हमें और हमें इस जगत् में कोई दोषी दिखाई नहीं देता है। हमें, बाय रिअल व्यू पॉइन्ट परमात्मा दिखाई देते हैं और बाय रिलेटिव व्यू पॉइन्ट निर्दोष दिखाई देते हैं। वह जीव चाहे कैसा भी हो किंतु वह अपने दोष के कारण दोषी नहीं है। खुद ऐसे संयोग में आ गया है इसलिए दोषी दिखाई देता है, मगर वास्तव में दोषी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सेन्टर (केन्द्र) में पहुँचने के बाद दोष रहता ही नहीं है न?

दादाश्री : फिर दोषी दिखता ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : मगर यदि बुरा मनुष्य बदनाम हो तो उसमें हर्ज क्या है?

दादाश्री : नहीं, मेरे निमित्त से नहीं होना चाहिए। बदनाम करनेवाले बहुत हैं, बाहर सभी हैं ही! किंतु वह मेरे निमित्त से नहीं होना चाहिए। क्योंकि इस जगत् में मैंने किसी के साथ जुदाई नहीं रखी है। किसी जीव मात्र से मैंने जुदाई नहीं रखी है, इसलिए मुझे किसी को बदनाम करना शोभा नहीं देता। यह तो उसके बारे में आपसे बात करता हूँ, लेकिन व्यावहारिक रूप से उसे बदनाम तो कर ही नहीं सकते न। क्योंकि गॉड इज़ इन एवरी क्रिएचर वेधर विज़िबल ओर इन्विज़िबल (जो दृश्यमान है और दृश्यमान नहीं है ऐसे प्रत्येक जीव में शुद्धात्मा भगवान विराजते हैं)।

अभेदता बरते वह शुद्धात्मा

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और महात्मा में क्या अंतर है?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो भगवान हैं। और अन्य किसी की भी तुलना में टोप पर हों तो उन्हें महात्मा कहते हैं। किंतु कषाय करता हो तब तक वह महात्मा नहीं कहलाता है। 'चंदुभाई' क्रोध करे मगर 'खुद' अंदर से विरोध करते रहें। 'अरे! यह क्यों होता है, यह नहीं होना चाहिए' अंदर उसे ऐसा रहता है। ऐसा आंतरिक संयम रहता हो वह महात्मा कहलाए। बाह्य संयम तो हो या नहीं भी हो। यह तो व्यवहार से हम महात्मा कहते हैं, मगर है तो वह शुद्धात्मा। शुद्धात्मा तो भगवान हैं, मगर वे भगवान अभी आपको प्रतीति स्वरूप में प्रकट हुए हैं। वह प्रतीति जब पूर्ण होगी तब अनुभव दशा संपूर्ण होगी। अभी प्रतीति-लक्ष्य-अनुभव, चढ़ते-उतरते रहते हैं। लेकिन जब संपूर्ण अनुभव बरते, जब सभी के साथ अभेदता लगे, तब वह शुद्धात्मा हो सके। शुद्धात्मा वही परमात्मा है।

समझदारी अभेदता नहीं तुड़वाती

प्रश्नकर्ता : आपकी दृष्टि में क्या है? ये लोग (आप्तपुत्र, ब्रह्मचारी) सारे कैसे तैयार होने चाहिए?

दादाश्री : सेफसाइड! यदि किसी प्रकार का दूसरा ज्ञान नहीं रहा तो उसमें हर्ज नहीं है। अन्य लोगों को उपदेश करना आदि, ऐसा नहीं आता हो तो हर्ज नहीं। उनके सिद्धांत को सेफसाइड (किसी भी प्रकार का हर्ज नहीं हो ऐसे) रीति से रह सकें।

प्रश्नकर्ता : यानी, ब्रह्मचर्य के सिद्धांत की सेफसाइड?

दादाश्री : केवल ब्रह्मचर्य ही नहीं, किंतु और भी सभी सिद्धांतों की। जैसे कि, किसी के साथ कषाय नहीं करें। कषाय करना गुनाह है, और स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के बाद तो कषाय करना शोभा ही नहीं देता न! ब्रह्मचर्य होना चाहिए और साथ ही कषाय का अभाव चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सेफसाइड की बाउन्ड्री (सलामती की सीमारेखा) कौन-सी है?

दादाश्री : सामनेवाला व्यक्ति आपको जुदा मानें और आप उसे एक समझें। वह आपको जुदा माने क्योंकि वह बुद्धि के अधीन है, इसलिए अलग मानेगा ही न? किंतु आपमें बुद्धि नहीं होनी चाहिए, ताकि एकता लगे, अभेदता लगे।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला भेद करता रहे तब?

दादाश्री : वह तो अच्छा है। उसके पास बुद्धि है, इसलिए क्या करे? उसके पास जो हथियार हो वही इस्तेमाल करेगा न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर हम उसके साथ अभेदता कैसे रखें?

दादाश्री : मगर वह जो करता है, वह तो परवश होकर करता है न बेचारा! और उसमें उसका क्या दोष है? वह तो करुणा रखने योग्य है।

मगर हमारे प्रयत्न ऐसे होने चाहिए कि हमारे साथ जिसकी अभेदता है वह नहीं टूटनी चाहिए। हमारी नासमझी अभेदता तुड़वाए तब तो वह गुनाह है। क्योंकि समझदारी तो अभेदता तुड़वाती नहीं है न! निबेड़ा तो लाना पड़ेगा न!

जहाँ प्योर हार्ट, वहीं एकता

एकता हो गई वह 'हार्ट की प्योरिटी' (हृदयशुद्धि) कहलाए।

मेरी सभी के साथ एकता हो जाती है क्योंकि हार्ट 'प्योर' ही है न! मुझे तो सभी अभेद ही लगते हैं।

आप कहें कि 'हमारे यहाँ आएँगे?' तो हम आएँ। हम हरएक जगह पर दर्शन करने भी जाते हैं। हमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। हमें जुदाई नहीं लगती है। हम प्रेमस्वरूप हो गए हैं, सर्वत्र प्रेमस्वरूप ही। हमें प्रेम के अलावा और कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप दिल के इतने प्योर हैं कि

एकबार मिलने के बाद आपसे अलग नहीं हो सकते।

दादाश्री : हाँ, इतना प्योर हूँ कि सारे ब्रह्मांड, सारी दुनिया के जीव मात्र के साथ मैं एक स्वभाव से रहता हूँ। विदेशी हो या चाहे कोई भी हो, क्रिश्चियन हो या आफ्रिकन हो मगर सबसे एकता ही है, अलगाव नहीं है। गाय-भैंस के साथ, किसी के साथ भी अलगाव नहीं, एकता ही। शुद्ध प्रेमस्वरूप वही परमात्मा है। जो बढ़े नहीं, घटे नहीं, वही परमात्मा।

बँधे प्रेम की डोरी से

प्रश्नकर्ता : दादाजी, इसलिए तो हमें ऐसा भाव होता है कि आपको कहीं जाने नहीं देना है।

दादाश्री : नहीं जाते। लोगों का हम पर इतना प्रेम है, वह प्रेम ही ज़िंदा रख रहा है। बहुत प्रेम है, जबरदस्त प्रेम है। मैं यहाँ (अमरीका) आने के लिए निकलता हूँ तब वहाँ लोग बहुत रोते हैं, तब मैं उनसे ऐसा कहता हूँ कि 'मैं आपके साथ ही रहूँगा।' ऐसा करके उन्हें पटाकर आ जाता हूँ, समझा-बूझाकर आता हूँ। तब और क्या करें फिर?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप बहुत नाटक करते हैं।

दादाश्री : मगर और करता भी क्या? यह ड्रामा (नाटक) है, मैं कहता हूँ न! यह वर्ल्ड अपने आप में ही ड्रामा है। मगर (ए. एम. पटेल में) तन्मयाकार होकर रहता हूँ। आपसे जुदाई नहीं है। इसलिए हमारा नाटक वास्तविक नहीं है, फिर भी इग्ज़ैक्टली है (दिल से है)।

ज्ञानी का अभेद प्रेम

जुदा नहीं होना, उसका नाम ही प्रेम। भेद नहीं करना, उसका नाम प्रेम। अभेदता हुई वही प्रेम। वह प्रेम नोर्मालिटी (मध्यस्थता) कहलाता है। भेद होने पर, यदि अच्छा काम करके आए तो खुश हो जाए और फिर थोड़ी देर के बाद यदि काम बिगड़ जाए, मानों चाय के कप गिरा दिए तो चिढ़ जाए। अर्थात् एबव नोर्मल और बिलॉ नोर्मल हुआ करे। जहाँ नोर्मल प्रेम है वहाँ काम नहीं देखा जाता, वहाँ तो वो मूल स्वभाव के ही दर्शन करे।

प्रश्नकर्ता : हममें आपके लिए जो भाव जागता है वह क्या है?

दादाश्री : वह तो हमारा प्रेम आपको जकड़ता है। सच्चा प्रेम सारे जगत् को जकड़ सकता है। प्रेम कहाँ होता है? प्रेम वहाँ होता है जहाँ अभेदता होती है। यानी जगत् के साथ अभेदता हुई कब कहलाए? कि (खुद) जब प्रेम स्वरूप हो जाए, तब। तब सारे जगत् के साथ अभेदता हुई कहलाए। इसलिए फिर वहाँ पर प्रेम के अलावा दूसरा कुछ दिखाई नहीं देता।

आसक्ति कब कहलाती है? कि जब कोई संसारी चीज़ लेनी हो तब, संसारी चीज़ की प्राप्ति का हेतु हो तब। किंतु इस सच्चे सुख के लिए तो 'फायदा होगा' ऐसा भाव रखने में हर्ज नहीं है। हमारे ऊपर जो प्रेम रहता है उसमें हर्ज नहीं है। वह आपकी मदद करेगा। अन्यत्र आड़ी जगह पर होनेवाला प्रेम उठ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मतलब, हम में जो भाव जगता है वह आपके हृदय के प्रेम का ही परिणाम है, ऐसा ही है न?

दादाश्री : हाँ, प्रेम का ही परिणाम है। मतलब हमारे प्रेम के हथियार से ही आप सयाने हो जाते हैं। मुझे डाँटना नहीं पड़ता।

मैं किसी को डाँटना नहीं चाहता। मेरे पास तो एक ही हथियार है, प्रेम का। 'मैं जगत् को प्रेम से जीतना चाहता हूँ।' क्योंकि दूसरे हथियार मैंने नीचे रख दिए हैं। जगत् हथियार लेकर सामना करता है। क्रोध-मान-माया-लोभ के हथियार मैंने नीचे रख

दिए हैं इसलिए मैं उनका इस्तेमाल नहीं करता हूँ। मैं प्रेम से जगत् को जीतना चाहता हूँ। जगत् जिसे प्रेम समझता है वह तो लौकिक प्रेम है। प्रेम तो वह है कि यदि आप मुझे गालियाँ दे तो मैं डिप्रेस (अवनत) नहीं होऊँ और यदि फूलमाला पहनाएँ तो एलिवेट (उन्नत) नहीं होऊँ, वह प्रेम कहलाए। सच्चे प्रेम में तो फर्क ही नहीं पड़ता। इस देह के भाव में फर्क पड़े मगर शुद्ध प्रेम में नहीं।

मनुष्य तो रूपवान होने पर भी अहंकार के कारण बदसूरत दिखाई देते हैं। सुंदर कब दिखाई दें? तब कहे, 'प्रेमात्मा होने पर।' तब तो बदसूरत भी रूपवान दिखाई दे। शुद्ध प्रेम प्रकट होने पर ही रूपवान दिखाई देने लगे। जगत् के लोगों को क्या चाहिए? मुक्त प्रेम। जिसमें स्वार्थ की बू या किसी प्रकार की अवसरवादिता नहीं हो।

यह तो कुदरत का लॉ (नियम) है। क्योंकि शुद्ध प्रेम वही खुद परमात्मा है।

जहाँ आसक्ति, वहाँ नहीं अभेदता

व्यवहार में जो अभेदता रहती है उसका कारण भी होता है। वे तो आसक्ति और परमाणु के गुण हैं, मगर उसमें किस क्षण क्या होगा यह कह नहीं सकते। जब तक परमाणु मिलते आएँ तब तक आकर्षण रहे, इसलिए अभेदता रहे। और मिलते परमाणु नहीं होने पर विकर्षण होता है और फिर बैर बंधता है। इसलिए, जहाँ आसक्ति होती है वहाँ बैर होता ही है। आसक्ति में हिताहित का भान नहीं होता। प्रेम में हिताहित का संपूर्ण भान होता है।

आसक्ति तो एबव नोर्मल और बिलो नोर्मल भी हो सकती है। किंतु प्रेम नोर्मालिटी में होता है, एक सरीखा ही होता है, उसमें किसी प्रकार का फेरफार (उतार-चढ़ाव) होता ही नहीं है। आसक्ति जो है वह तो जड़ की आसक्ति है, चेतन की तो नाम मात्र को भी नहीं है।

जहाँ अभेद प्रेम वहाँ बुद्धि का अंत

भगवान कैसे हैं? अनासक्त। किसी जगह आसक्त नहीं।

प्रश्नकर्ता : और ज्ञानी भी अनासक्त ही हैं न?

दादाश्री : हाँ, इसलिए हमारा जो प्रेम होता है वह निरंतर सर्वत्र सरीखा, समान प्रेम होता है। गाली देनेवाले पर भी समान, फूलमाला पहनाए उसके ऊपर भी समान और फूलमाला नहीं पहनाए उसके ऊपर भी समान। हमारे प्रेम में भेद नहीं पड़ता है और जहाँ अभेद प्रेम है वहाँ से तो फिर बुद्धि भी बिदा लेती है। प्रेम हमेशा पहले बुद्धि को तोड़ देता है और या तो बुद्धि प्रेम को आसक्त बनाती है। यानी जहाँ बुद्धि होती है वहाँ प्रेम नहीं होता और जहाँ प्रेम होता है वहाँ बुद्धि नहीं होती। और अभेद प्रेम उत्पन्न होते ही बुद्धि खलास हो गई मतलब अहंकार खलास हुआ। फिर जब ममता भी नहीं रहेगी तब प्रेम स्वरूप हो जाएँगे। हम तो अखंड प्रेमवाले हैं। हमारी इस देह के ऊपर ममता नहीं है। इस वाणी के ऊपर ममता नहीं है और मन के ऊपर भी ममता नहीं है।

सभी में 'मैं' को देखे, वह प्रेममूर्ति

जितना भेद मिट जाए, उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। शुद्ध प्रेम उत्पन्न होने के लिए खुद में से कोई वस्तु कम होगी तो ही वह (शुद्ध प्रेम रूपी) वस्तु आएगी। मतलब वेक्युम (खाली) रह नहीं सकता। इसलिए खुद में से जितना भेद चला जाए उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। मतलब जितना भेद जाएगा उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होगा। संपूर्ण भेद जाने पर संपूर्ण शुद्ध प्रेम उत्पन्न होगा। यही रीति है।

यह 'पॉइन्ट ऑफ व्यू' आपकी समझ में आया? यह अलग तरह का है, और प्रेममूर्ति बन जाना है। सब एक ही लगे, जुदाई लगती ही नहीं। यहाँ हमारे पास आने से पहले कहते हैं 'यह हमारा और यह तुम्हारा', मगर यहाँ से जाते समय 'हमारा-तुम्हारा'

होता है? मतलब रोग को लेकर जुदाई लगती है। वह रोग निकल गया यानी प्रेममूर्ति हो जाए।

प्रेम यानी यह सबकुछ 'मैं' ही हूँ, सर्वत्र 'मैं' ही दिखाई देता हूँ। वर्ना 'तू' कहना पड़ेगा। 'मैं' नहीं दिखेगा तो 'तू' दिखेगा। दो में से एक तो दिखेगा ही न? व्यवहार में ऐसा बोलना कि 'मैं', 'तू' आदि। मगर सर्वत्र दिखना चाहिए तो 'मैं' ही न? अर्थात् प्रेमस्वरूप यानी क्या? सब अभेदभाव से देखना, अभेदभाव से वर्तन करना, अभेदभाव से चलना। अभेदभाव ही मानना। 'यह अलग है' ऐसी वैसी सारी मान्यताएँ निकाल देना, उसका नाम ही प्रेमस्वरूप। एक ही कुटुंब हो ऐसा लगे।

हम ज्ञानिओं को भेद नहीं होता। क्या क्राइस्ट या क्या अल्लाह? क्या कृष्ण या क्या महावीर? हमारी सबसे अभेदता होती है। जब कि लोगों में भेदबुद्धि है इसलिए उनको ऐसा भेद रहा करे कि 'हमारे क्राइस्ट' और 'हमारे ये'। भेदबुद्धि से ही तो लोग गेहूँ में कंकड़ मिलाते हैं। स्वच्छ गेहूँ में कंकड़ मिलाते हैं।

सात्विक नहीं, यह तो शुद्ध प्रेम

प्रश्नकर्ता : आज दुनिया में सभी लोग शुद्ध प्रेम के लिए मिथ्या प्रयत्न में लगे हैं।

दादाश्री : शुद्ध प्रेम का ही यह रास्ता है। हमारा यह जो विज्ञान है, वह किसी भी प्रकार की, किसी भी तरह की इच्छा बगैर का है, मतलब शुद्ध प्रेम का यह रास्ता खुल गया है। वर्ना इस काल में ऐसा नहीं होता। किंतु इस काल में ऐसा रास्ता खुला वह अजूबा हो गया है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध प्रेम और सात्विक प्रेम का भेद समझाइए न।

दादाश्री : सात्विक प्रेम अहंकार सहित होता है और शुद्ध प्रेम में अहंकार ही नहीं होता। सात्विक प्रेम में केवल अहंकार ही होता है। उसमें लोभ नहीं होता, कपट नहीं होता, उसमें सिर्फ मान ही होता है। अहम्-मैं हूँ, उतना ही। वहाँ खुद को अस्तित्व का भान होता है और शुद्ध प्रेम में तो खुद अभेद स्वरूप हो गए होते हैं।

प्रेम स्वरूप होने पर हो अभेदता

वास्तविक रूप से जगत् जैसा है वैसा उसे जानें, फिर उसका अनुभव करे, तो प्रेमस्वरूप ही हो जाए। 'जगत् जैसा है वैसा', अर्थात् क्या? कि कोई जीव किंचित् मात्र दोषी नहीं है, जीव मात्र निर्दोष ही है। मुझे कोई दोषी दिखता नहीं है। दोषी, विभक्त अवस्था को लेकर है। विभाजित अवस्था को लेकर, भेद स्वरूप से है। भेदबुद्धि से दोषी दिखता है। जिसकी भेदबुद्धि गई, जिसको अभेदता उत्पन्न हुई, वहाँ दोषी जैसा कुछ भी है ही नहीं। जगत् में प्रेम ही है।

अच्छे दिखाई देते हैं वह भी भ्राँति है और दोषी दिखाई देते हैं वह भी भ्राँति है। दोनों अटैचमेन्ट और डिटेचमेन्ट (लगाव और अलगाव) ही हैं। मतलब वास्तविक रूप से कोई दोषी है ही नहीं और फिर भी दोषी दिखाई देते हैं इसलिए प्रेम हो ही नहीं सकता। यानी जगत् के साथ तब प्रेम होगा जब सारा जगत् निर्दोष दिखाई देगा, तब प्रेम उत्पन्न होगा। यह 'मेरा-तेरा' कब तक लगता है कि जब तक अभी दूसरों को अलग समझते हैं। उनके साथ भेद है तब तक। ये 'मेरे-तेरे' लगते हैं तब तक। यानी अटैचमेन्टवालों को 'मेरा' मानते हैं और डिटेचमेन्टवालों को 'पराया' मानते हैं, ऐसे लोग किसी के साथ प्रेमस्वरूप नहीं रहते।

अत: यह प्रेम, परमात्मा गुण है। इसलिए उस प्रेम से खुद का सारा का सारा दु:ख विस्मृत हो जाता है। यानी, प्रेम से बँधे इसलिए फिर अन्य किसी से बँधना रहा नहीं।

प्रेम कब उत्पन्न होता है? आज तक जो भी भूलें हुई है उनकी माफ़ी माँग लें तब प्रेम उत्पन्न होता है। जिसके साथ प्रेम स्वरूप होना हो उसके साथ ऐसा करना, तो आपको प्रेम उत्पन्न होगा। ऐसा प्रेम उत्पन्न करना है या नहीं करना है?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी, दादाजी।

दादाश्री : हमारी ऐसी रीति है। हम जैसे तरे हैं वैसे ही सभी को तारे हैं।

आप प्रेम उत्पन्न करेंगे न? जब प्रेम स्वरूप होते हैं तब सामनेवाले को अभेदता होती है। सभी मेरे साथ ऐसे अभेद हुए हैं। यह रीति खुली कर दी।

बरते अभेदता विश्व संग

भीतर दु:ख छूए नहीं तब समझना कि अब प्रकृति सहज हो गई और दिन-ब-दिन अभेदता बढ़ती जाए। यहाँ इस कमरे में बैठे हैं जो उनमें अभेदता बरते फिर ऐसा करते करते सारे गाँव के साथ अभेदता बरते। फिर सारे हिंदुस्तान के साथ अभेदता बरते, सारी दुनिया के साथ अभेदता बरते।

बालक समान निर्दोष होने पर ज्ञान प्रकट होता है। घर में यदि दस मनुष्य हों तो सबको अपना ही मानें, 'अब यह सब मेरे ही हैं और हम एक ही हैं' ऐसा मानें। जब इतना मानने पर आनंद आता है तो सारे गाँव को अपना मानें तो कितना आनंद होगा? और सारा जिला एक मानें तो कितना आनंद आए? गांधीजी सारे हिंद को एक मानते थे तो उनको कितना आनंद आता होगा? फिर मनुष्य कैसे थकेगा? और हमें तो सारे ब्रह्मांड का आनंद आता है, सारे विश्व का!

यद्यपि अब सारा ब्रह्मांड मेरा है। मेरी तो कहीं पर किसी जगह जुदाई है ही नहीं लेकिन जितना दिखाई दे उतनी ही बाउन्ड्री होगी न? बाउन्ड्री कितनी? दिखाई दे उतनी ही। आप मेरे पास आए तो मैं आपको आपके संबंध में ही बात करूँगा न? और जो यहाँ आया ही नहीं हो उसके साथ कैसे बात करूँ? लेकिन फिर भी 'वह मेरा नहीं है' ऐसा तो मुझसे कहा ही नहीं जाए। मैं जीव मात्र के साथ अभेदभाव से रहता हूँ। सारा दिन सर्वत्र घूमता हूँ, अमरीका भी जाकर आता हूँ, क्योंकि अमरीकावाले भी खत लिख भेजते हैं कि 'आप अमुक दिन आकर मुझे (सपने में) विधि करवा गए थे।' मुझे तो कुछ पता भी नहीं होता है, किंतु वहाँ से खत आता है। यानी यहाँ कायदा नहीं है इसलिए नो लॉ लॉ। कौन-सा कानून? नो लॉ लॉ। लॉ (कायदा) सही, मगर नो लॉ (कायदा नहीं)।

अक्रम विज्ञान का 'फाउन्डेशन'

जिसने जगत् के शिष्य होने की दृष्टि का वेदन नहीं किया है, जगत् में वह 'महावीर' नहीं हो सकता। छोटा बच्चा हो, बालक हो, मूरख हो, उन सभी का शिष्य होने की दृष्टि!

लघुतम तो हमारा केन्द्र ही है। उस केन्द्र में बैठे-बैठे गुरुतम की प्राप्ति होती है। हमारी तो सारी नवीन 'थ्योरियाँ' हैं, बिलकुल नयी।

यह विज्ञान कुछ ऐसे ही बिना फाउन्डेशन के नहीं है। 'इस' विज्ञान का 'फाउन्डेशन' क्या है? लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखना। जीव मात्र के साथ, सारे ब्रह्मांड के जीवों के साथ अभेद दृष्टि रखना यही इस अक्रम विज्ञान का 'फाउन्डेशन' है।

ऐसे सारे जगत् के साथ अभेद होना है! भेद यानी संसार और अभेदता वह परमात्मापन। लोगों के साथ जितनी अभेदता बरते उतना परमात्मापन प्रकट होता है।

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सांनिध्य में आगामी सत्संग कार्यक्रम

त्रिमंदिर अडालज

२ जनवरी (शनि) शाम ४-३० से १०-३० **सत्संग और भक्ति** (प.पू.दादाश्री की पुण्यतिथि के अवसर पर)
३ जनवरी (रवि), दोपहर ३-३० से ७ **ज्ञानविधि**
१० से १७ जनवरी - 'प्रतिक्रमण' ग्रंथ पर गुजराती में **पारायण सत्संग शिविर.** (रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक)

सुरेन्द्रनगर (गुजरात)

२८ नवम्बर, रात ७-३० से १० - **सत्संग** तथा **२९ नवम्बर** (रवि), शाम ५-३० से ९ - **ज्ञानविधि**
स्थल : आर्ट्स एन्ड सायन्स कोलेज ग्राउन्ड, बस स्टेन्ड रोड. **फोन :** 9879232877

राजकोट (गुजरात)

१-२ दिसम्बर, रात ७-३० से १० - **सत्संग** तथा **३ दिसम्बर** (गुरु), शाम ६-३० से १० - **ज्ञानविधि**
स्थल : श्री विराणी हाईस्कूल ग्राउन्ड, टागोर रोड. **फोन :** 9924343910

जूनागढ (गुजरात)

५ दिसम्बर, रात ७-३० से १० - **सत्संग** तथा **६ दिसम्बर** (रवि), शाम ५-३० से ९ - **ज्ञानविधि**
स्थल : ए. जी. स्कूल ग्राउन्ड, तालाब दरवाज़ा. **फोन :** 9427242889

वेरावल (गुजरात)

८ दिसम्बर, शाम ७-३० से १० - **सत्संग** तथा **९ दिसम्बर** (बुध), शाम ६-३० से १० - **ज्ञानविधि**
स्थल : रेयोन क्रिकेट ग्राउन्ड, सुपरवाइझर बिल्डिंग के पीछे, ८० फिट रोड. **फोन :** 9898221033

जामनगर (गुजरात)

१२ दिसम्बर - शाम ६ से ८-३० - **सत्संग** तथा **१३ दिसम्बर** (रवि), शाम ५ से ८-३० - **ज्ञानविधि**
स्थल : विजय इन्डस्ट्रियल एस्टेट, हीरजी मिस्त्री रोड, प्रणामी स्कूल के सामने. **फोन :** 9377716561

मोरबी (गुजरात)

१५ दिसम्बर, रात ८ से १०-३० - **सत्संग** तथा **१६ दिसम्बर** (बुध), शाम ७-३० से ११ - **ज्ञानविधि**
स्थल : मार्केटिंग यार्ड, हाउसींग बोर्ड के सामने, शनाला रोड. **फोन :** 9426932436

गांधीधाम (गुजरात)

१९ दिसम्बर, रात ७ से ९-३० - **सत्संग** तथा **२० दिसम्बर** (रवि), शाम ६ से ९-३० - **ज्ञानविधि**
स्थल : शक्तिनगर क्रिकेट ग्राउन्ड, गांधीधाम. **फोन :** 9601551687

भोपाल (मध्यप्रदेश)

५-६-७ फरवरी (हिन्दी में सत्संग तथा ज्ञानविधि) समय-स्थल के बारे में जानकारी अगले अंक में दी जाएगी।

पूज्य नीरूमाँ / पूज्य दीपकभाई को देखिए टी.वी. चैनल पर

भारत ✦ **'आस्था'** पर हर रोज़ शाम ६-३० से ७ (हिन्दी में)
✦ **संस्कार'** पर हर रोज़ रात ८-३० से ९ (हिन्दी में)
✦ **'झी जागरण'** पर हर रोज़ रात ९-३० से १० (हिन्दी में)

✦ **समग्र विश्व में** (भारत के अलावा) **सोनी टीवी** पर (सोम से शुक्र) सुबह ७ से ७-३० (हिन्दी में)

भुज (कच्छ) में...

परम पूज्य दादा भगवान प्रेरित

निष्पक्षपाती त्रिमंदिर का भव्य प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सांनिध्य में...

दिनांक २३ दिसम्बर से २७ दिसम्बर, २००९

आध्यात्मिक ज्ञानशिविर : दि. २३-२४ दिसम्बर- सुबह १० से १२-३०, शाम ४-३० से ७
दि. २६ दिसम्बर - शाम ४-३० से ७
हररोज़ रात ८-३० से ९-३० भक्ति/गरबा/कीर्तन भक्ति

ज्ञानविधि : दि. २५ दिसम्बर, दोपहर ३-३० से ७ बजे तक

प्राणप्रतिष्ठा : दि. २५ दिसम्बर, सुबह ६ से ८ - पद्मावती माँ, पद्मनाभ प्रभु, अन्य भगवंत
दि. २६ दिसम्बर, सुबह ६ से ८ - अंबा माँ, आशापुरा माँ, सांईबाबा, अन्य भगवंत
दि. २७ दिसम्बर, सुबह ६ से ९ - श्री सीमंधर स्वामी, श्री कृष्ण भगवान और
श्री शिव भगवान की अलौकिक प्राणप्रतिष्ठा और रात ८-३० से ९-३० विशेष भक्ति

दि. २५-२६-२७ दिसम्बर, हर रोज़ सुबह प्रतिष्ठा के बाद १ घंटे के विराम बाद प्रक्षाल-पूजन होगा।

स्थल : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, सहयोगनगर के पास, एयरपोर्ट रोड, भुज (कच्छ), गुजरात.

संपर्क : 9428293903, 9601551687

(भूज त्रिमंदिर एयरपोर्ट से क़रीबन २ कि.मी., रेल्वे स्टेशन से ३ कि.मी. और बस स्टेशन से २ कि.मी. के अंतर पर है।)

बाहर से आनेवाले महात्मा-मुमुक्षुओं की व्यवस्था हेतु खास सूचनाएँ

इस महोत्सव में भाग लेने के इच्छुक महात्मा-मुमुक्षु दि. ३० नवम्बर, २००९ तक अपने नज़दीकी गाँव-शहर के सत्संग सेन्टर में अवश्य रजिस्ट्रेशन करवाएँ। बिना रजिस्ट्रेशन वाले महात्मा-मुमुक्षुओं को अपनी व्यवस्था अपनेआप करनी होगी। महोत्सव के दौरान आप अपने रहने की व्यवस्था खुद करनेवाले हैं या आपकी व्यवस्था यहाँ व्यवस्थापकों को करनी है, इसकी जानकारी आपके नज़दीकी सत्संग सेन्टर प्रतिनिधि को या फिर अडालज सेन्टर पर अवश्य दीजिए। और जहाँ पर सत्संग सेन्टर नहीं है, सिर्फ वही महात्मा अडालज त्रिमंदिर (फोन: ०७९-३९८३०४००) पर सुबह-९ से १२ और शाम-४ से ७ के बीच अपना रजिस्ट्रेशन करवाएँ।

महात्माओं के रहने की व्यवस्था त्रिमंदिर के आसपास टेन्ट (तंबु) में, मकानों में या धर्मशाला में होनेवाली है। उपलब्ध व्यवस्था में से आपको किसी भी जगह ठहरने की व्यवस्था (जगह) मिल सकती है, इसलिए आप इस पूर्व तैयारी के साथ आएँ। स्त्रियों एवं पुरुषों के रहने की व्यवस्था अलग-अलग होने से अपना सामान अलग से लाएँ। आपको गद्दा एवं ओढ़ने के लिए कम्बल मिलेगा, फिर भी दिसम्बर में सर्दी का मौसम होने के कारण आप इसके अलावा भी अपनी जरूरत को ध्यान में रखकर ओढ़ने का साथ में लाएँ। स्वेटर-जेकेट, टोपी-मफलर, मोज़े, शाल आदि भी साथ लाएँ। नहाने के लिए गरम पानी की व्यवस्था की जाएगी। किसी भी प्रकार का अनावश्यक क़ीमती सामान या आवश्यकता से अधिक पैसे साथ में न लाएँ।

जिन महात्माओं के पास परमानेन्ट आइकार्ड (पहचानपत्र) है, वे अपनी पहचान के लिए अवश्य साथ लाएँ।

आप सबको पधारने के लिए हार्दिक निमंत्रण है।